(देश देशान्तरों में प्रचारित, उच्च कोटि का अध्यात्मिक मासिक-पत्र)

[वार्षि]क मू० २॥)

सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई ।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई ॥

अंक

[स]म्पादक-पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, सहा० सम्पा०-प्रो० रामचरण महेन्द्र एम०ए०

[व]र्ष ८ | मथुरा, १ मई सन् १९४७ ई० | अंक ५

कहीं आप भी तो शेख चिल्ली नहीं हैं ?

एक शेख चिल्ली ने मधुर कल्पनाओं में मस्त होकर अपने शिर पर रखे हुए तेल के घड़े को फोड दिया था, और मजूरी के पैसे मिलना तो दूर उलटा लातों घूंसों से पिटा था। वह शेख चिल्ली निस्संदेह बेवकूफ था और उसकी बेवकूफी की हँसी उडाई जाती है।

हम देखते हैं कि हम सब भी प्रकारान्तर से शेख चिल्ली का पार्ट अदा कर रहे हैं। कमाने के लिए घुडदौड लगाते हुए हम यह भूल नहीं देखते कि साथ ही कितना गमाया जा रहा है। भौतिक सम्पदाओं के कमाने में, संग्रह में, भोग में, हमारा मन ललचाता रहता है और उसकी पूर्ति के लिए सोते जागते, मन कर्म, वचन, से लगे रहते हैं। प्रयत्न से वस्तुओं की जितनी मात्रा मिलती है, तृष्णा उससे भी बहुत आगे बढ जाती है फल स्वरूप सदा अभाव ही बना रहता है, कङ्गाली कभी दूर ही नहीं हो पाती और सम्पदाओं के सुख से संतुष्ट होने का अवसर ही नहीं आ पाता इस भूमी कूटने में ही जीवन की समाप्ति की घंटी बज जाती है। सुदुर्लभ मानव जीवन को निरर्थक मृगतृष्णा में गँवा कर अन्त में घाटे के साथ लौटना पडता है। पिछली कमाई गम जाती है और पाप की गठरी सिर पर होती है। इस दुहरे घाटे के साथ हम अपने घर वापिस लौटते हैं।

शेख चिल्ली ने तेल की मजूरी जैसे छोटे मामले में प्रमाद किया और सभ्य लोगों की दृष्टि में अपने को उपहासास्पद बनाया। पर हम लोग क्या हैं ? जो मनुष्य जीवन जैसे महत्व पूर्ण मामले में इतना भयङ्कर प्रमाद बरत रहे हैं। हमारी बेवकूफी पर कितनी हँसी होगी ? इसे हम लोग क्यों नहीं सोचते ?

शैतान को आत्म समर्पण न करो

जिन विचारों, सिद्धान्तों और कार्यों को मनुष्य सत्य, उचित एव आवश्यक समझता है कभी-कभी वह उनके अनुसार कार्य नहीं कर पाता। परिस्थितियां और कमजोरियां उसे इस योग्य नहीं बनने देगी कि जिन सिद्धान्तों को वह सत्य समझता है, उनके अनुसार व्यवहारिक जीवन को बना सके। वर्तमान वातावरण को पार करना उसे कठिन प्रतीत होता है।

ऐसी स्थिति में कितने ही लोग आत्म वंचना करने लगते हैं। हृदय जिस बात को अनुचित एव असत्य समझता है, वहस में उसी बात का पक्ष समर्थन करने लगते हैं। उस अनुचित को उचित सिद्ध करने के लिए उनका मस्तिष्क लम्बी चौडी वकालत करने लगता है और कई कई जोरदार दलीलें इस ढङ्ग से पेश करता है जिसके उसका पक्ष मजबूत हो जाय। और यह मानलिया जाय कि मैं जिस कार्य को कर रहा हूँ वह अनुचित नहीं उचित है।

यह मार्ग अध्यात्मिक दृष्टि से बहुत ही नीची श्रेणी का काम है। इसे शैतान को आत्म समर्पण करना कहा जा सकता है। मजबूरी की हालत में विवश होकर, दूसरों के दबाव या व्यक्तिगत स्वभाव संस्कारों की कमजोरी के कारण कोई ऐसा काम करना पड रहा है जो अनुचित प्रतीत होता है, तो यह आवश्यकता नहीं कि हम अनुचित को उचित सिद्ध करने का प्रयत्न करें। यह तो शैतान की वकालत होगी।

जो बात अनुचित है उसे हृदय में अनुचित ही मानिए। आप उसका त्याग नहीं कर पा रहे हैं यह दूसरी बात है। चूंकि हम बीमार हैं इस लिए बीमारी अच्छी चीज है यह कहना या खुद समझना कोई बुद्धिमानी की बात नहीं है। मनुष्य भूलों, कमजोरियों और बुराइयों से मुक्त नहीं है। आप भी उनसे मुक्त नहीं हैं।

हमें अपनी कमजोरियों को समझना चाहिए और उनके विरुद्ध विद्रोह जारी रखना चाहिए चाहे वह विद्रोह कितना ही मंद क्यों न हो। जो बुराई है उसे बुराई ही समझना चाहिए। अपने मल मूत्र को भी कोई पवित्र नहीं मानता फिर अपनी बुराई को अच्छाई क्यों बताया जाय? गीता में भगवान् कृष्ण ने हर घडी युद्ध जारी रखने का उपदेश किया है। यह युद्ध अपनी बुराई और कमजोरियों के विरुद्ध ही लडा जाता है। शत्रु के विरुद्ध जब तक किसी भी रूप में लडाई जारी है तब तक पराजय नहीं समझी जाती। गत महायुद्ध में हमने देखा कि जिन देशों पर शत्रु ने कब्जा कर लिया उनने गुरिल्ला युद्ध जारी रखे, शत्रु के सामने आत्म समर्पण न किया। राजनीतिज्ञ जानते हैं कि जब तक कोई जाति मानसिक दृष्टि से पराधीन नहीं हो जाती, मानसिक आत्मसमर्पण नहीं कर देती तब तक वह राजनैतिक गुलाम नहीं कही जा सकती। जिस जाति ने मानसिक दृष्टि से पराधीनता स्वीकार नहीं की है वह एक न एक दिन अवश्य ही राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर के रहेगी।

यही बात अपनी बुराइयों के सम्बन्ध में है। परिस्थितियां और कमजोरियां पैदा करके शैतान ने किसी को अवांछनीय स्थिति में डाल रखा है, गुलाम बना लिया है, कब्जा कर लिया है तो भी उसे चाहिए कि गुरिल्ला युद्ध जारी रखे। मन में नित्य प्रति दुहराता रहे कि यह मेरी कमजोरी है, इस कमजोरी से मुझे घृणा है। इसे एक न एक दिन दूर करके रहूँगा। अवसर आने पर दूसरों के सामने भी अपनी कमजोरी, भूल, स्वीकार करनी चाहिए। कम से कम उसका समर्थन तो नहीं ही करना चाहिए। इस प्रकार यदि शैतान के आगे आत्म समर्पण न किया जाय, उसके विरुद्ध युद्ध जारी रखा जाय तो एक न एक दिन पूर्ण अध्यात्मिक स्वतंत्रता—मुक्ति—मिले बिना न रहेगी।

मथुरा १ मई सन् १९४७ ई०

अपने को आवेशों से बचाइए

भूतकाल की बीती हुई दुखदाई घटनाओं का स्मरण कर करके कितने ही मनुष्य अपने आपको बेचैन बनाये रहते हैं। किसी प्रियजन की मृत्यु पैसे की हानि, अपमान, विछोह आदि की कटु स्मृतियों को वे भुला नहीं पाते और सदा कुढते एवं जलते रहते हैं। इसी प्रकार कितने ही मनुष्य भविष्य की कठिनाइयों को हल करने की चिन्ता में जला करते हैं। लडकी के विवाह के लिए इतना रुपया कहां से आवेगा? बुढापे में क्या खायेंगे? लडके कुपात्र निकले तो प्रतिष्ठा कैसे कायम रहेगी? गरीबी आ गई तो कैसी बीतेगी? इतना धन इकट्ठा न हो पाया तो अमुक कार्य कैसे पूरा होगा? अमुक ने सहारा न दिया तो कैसी दुर्दशा होगी? अमुक आपत्ति आ गई तो भविष्य अन्धकार मय हो जायगा। आदि अनेकों प्रकार के भावी सङ्कटों की चिन्ता में रक्त, मांस को सुखाते रहते हैं। भूत का शोक और भविष्य का भय इतना त्रास दायक होता है कि मस्तिष्क का अधिकांश भाग उसी में उलझा रहता है। वर्तमान समय की गुत्थियों को सुलझाने और सामने पड़े हुए कार्य को पूरा करने के लिए शक्तियों का बहुत थोडा भाग बचता है। उस बचे खुचे, आंशिक मनोबल से जो थोडा सा काम हो पाता है, उतने मात्र से व्यवस्था क्रम यथ वत् नहीं चल सकता। फल स्वरूप गति अवरोध उत्पन्न होकर जीवन की बधिया बैठ जाती है। इस उलझन भरी दशा में किं कर्त्तव्य विमूढ होकर कितने ही मनुष्य आत्म-हत्या कर लेते हैं, पागल हो जाते हैं, घरबार छोड कर भाग जाते हैं या और दुखदायी कार्य कर बैठते हैं कितने ही घोर निराशावादी या सनकी हो जाते हैं कितने ही इस अशांति के भार से कुछदेर के लिये छूट पाने को अपने आपको भूलने को, नशेबाजी की सत्यनाशी प्रयत्न करते हैं।

आवेशों से मानसिक तन्तुओं को सदा उत्तेजित रखना, अपने आपको जलती मशाल से झुलसाते रहने के समान है। आवेशों-जीवन की अस्वाभाविक दशा है, उनसे शक्तियां का भयङ्कर रूप से नाश होता है। डाक्टरों ने पता लगाया है कि यदि मनुष्य ४८ घण्टे लगातार क्रोध में भरा रहे तो लगभग ८ औंस खून जल जायगा और इतना बिष उत्पन्न हो जायगा जितना कि १ तोला कुचला से उत्पन्न होता है। चिन्ता की अधिकता से हड्डियों के भीतर रहने वाली मज्जा सूख जाती है फलस्वरूप निमोनियां इन्फलुऐन्जा सरीखे रोगों के आक्रमण का अंदेशा बढ जाता है। ऐसे लोगों की हड्डियां टेढी पड जाती हैं और नियत स्थान से ऊपर आ जाती हैं। कनपटी की, गले की, कन्धे कान के पीछे की हड्डियां यदि ऊपर उभर आई हों तो कहा जा सकता है कि वह व्यक्ति चिन्ता में घुला जा रहा है। लोभी और कन्जूसों को कब्ज की शिकायतें बनी रहती हैं और आये दिन जुकाम बना रहता है। भय और आशङ्का से जिनका कलेजा कांपता रहता है, उनके शरीर में लोहू और क्षार की मात्रा कम हो जाती है। बाल झडने लगते हैं और सफेद होने लगते हैं। शोक के कारण नेत्रों

की ज्योति-क्षीणता, गठिया, स्मरण शक्ति की कमी स्नायविका दुर्बलता, बहु मूत्र, पथरी, सरीखे रोग हो जाते हैं। ईर्षा, द्वेष एवं प्रतिहिंसा की जलन के कारण तपैदिक, दमा, बहरापन, कुष्ट सरीखी व्याधियां उत्पन्न होती देखी जाती है। कारण स्पष्ट है—इन मानसिक आवेशों के कारण एक प्रकार का अन्तर्दाह उत्पन्न होता है। अग्नि जहां रहती है, वहां जलाता है। अन्तर्दाह की अग्नि में जीवन के उपयोगी तत्व ईंधन की भांति जलते रहते हैं, जिससे देह भीतर ही भीतर खोखली हो जाती है। जहां अग्नि जलती है, वह आक्सिजन [प्राण वायु] खर्च होती है,और कार्बन गैस [विष वायु] उत्पन्न होती है। अन्तर्दाह की क्रिया से भी अनेकों विष उत्पन्न हो जाते हैं, जिनके कारण शरीर तरह-तरह के रोगों का घर बन जाता है और कुछ ही समय में इतना सड़ गल जाता है कि जीवात्मा को असमय में ही उसे छोड़ कर भागने के लिए विवश होना पड़ता है।

आवेशों का तूफान न शारीरिक स्वास्थ्य को कायम रहने देता है और न मानसिक स्वास्थ्य को। वैद्य को नाड़ी पकड़ने से कोई रोग भले ही न मालूम पड़े पर वस्तुतः आवेश की अवस्था में जीवन की उतनी ही क्षति होती रहती है, जितनी कि बड़े-बड़े भयङ्कर रोगों के समय होती है। यह सर्व विदित है कि रोगी मनुष्य शारीरिक दृष्टि से एक प्रकार का अपाहिज बन जाता है। वह चाहता है कि काम करूँ पर होता कुछ नहीं। जरा देर काम करने पर थक कर चूर हो जाता है, मन वहां जमता ही नहीं, काम को छोड़ कर लेट जाने या कहीं चले जाने की तबियत करती है, करता कुछ है किंतु हो कुछ जाता है, जरा देर के काम में काफी समय खर्च हो जाता है, सो भी ठीक तरह होता नहीं, जब निरीक्षण किया जाता है तो भूल पर भूल निकलती हैं। आवेश में भरा हुआ मनुष्य आधा पागल बन जाता है, वह कभी सर्प की तरह फुसकारने दौड़ता है, कभी ऐसा दीन और कातर हो जाता है कि विलाप करने रोने विरक्त बनने आत्म हत्या करने के अतिरिक्त और कुछ सूझ ही नहीं पड़ता। मेरे इस आचरण का भविष्य में क्या परिणाम होगा, यह सोचने में उसकी बुद्धि बिलकुल असमर्थ होजाती है।

जीवन को समुन्नत दिशा की ओर ले जाने के लिये यह आवश्यक है कि विवेक बुद्धि ठीक प्रकार काम करे। विवेक बुद्धि की स्थिरता के लिए निराकुलता आवश्यकता है। दर्पण या पानी में प्रतिबिम्ब तभी दिखाई पड़ सकता है जब वह स्थिर हो यदि दर्पण या पानी हिल रहा हो तो उसमें प्रतिबिम्ब भी ठहर न सकेगा। मस्तिष्क में जब उफान आ रहे हों तो विवेक स्थिर नहीं रह सकता। ठीक पथ प्रदर्शन कराने वाली बुद्धि तभी उद्भूत होगी जब मन शांति हो, स्थिर हो, निराकुल हो। किसी काम की अच्छाई बुराई, हानि, लाभ, सुविधा कठिनाई आदि की ठीक-ठीक कल्पना करने और अनेक दृष्टियों से विचार करके किसी अन्तिम निर्णय पर पहुंचने की क्षमता रखने वाला विवेक तभी मस्तिष्क में रह सकता है जब आवेशों की उद्विग्नता न हो। जो कार्य भले प्रकार आगा—पीछा सोच कर आरम्भ किए जाते हैं, जोश और उतावली में बिना विचारे जिन कार्यों को आरम्भ किया जाता है, प्रायः उन्हें बीच में ही छोड़ने को विवश होना पड़ता है।

अध्यात्म विद्या के प्रायः सभी ग्रंथों में मन को रोकने चित्त वृत्तियों को एकाग्र करने, मन को वश में करने का पग-पग पर आदेश किया है। अनेकों साधनाएं मन को वश में करने की बताई गई हैं। यह मन को वश में करना और कुछ नहीं, "निराकुलता" ही है। दुख—सुख, हानि—लाभ, जय—अजय के कारण उत्पन्न होने वाले आवेशों से बचना ही योग की सफलता है। गीता

यंहि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
सम दुखः सुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥२—१५॥
सुखे दुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जय जयौ॥२ -३८॥
दुःखे ष्वनुद्विग्न मनः सुखेषु विगत स्पृहः।
बीत राग भय क्रोधः स्थित धी मु निरुच्यते॥२—५६॥
न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चा प्रियम्।
स्थिर बुद्धिरसं मूढो ब्रह्मविद ब्रह्मणि स्थितः॥५—२०॥

आदि अनेक स्थलों पर निराकुलता को योग की सफलता बताया गया है। आवेश सुख प्रधान और दुख प्रधान दोनों प्रकार के हैं। शोक, हानि, विछोह रोग, दंड, भय, विपत्ति, मृत्यु क्रोध, अपमान, कायरता आदि हानि प्रधान आवेश हैं। कुछ आवेश लाभ प्रधान भी होते हैं — लाभ, सम्पत्ति, मिलन, कुटुम्ब, वल, सत्ता, पद, धन, मैत्री, विद्या, ऋद्धि कल, कला, विशेषता आदि के कारण एक प्रकार का नशा चढ आता है। इस प्रकार की कोई सम्पत्ति जब बडी मात्रा में यकायक मिल जाती है तब तो मनुष्य यदर्षोन्मत्त हो जाता है। उसकी दशा अर्ध विक्षिप्त जैसे हो जाती है। सुख के मारे लोग फूले नहीं समाते वे कस्तूरी हिरन की तरह इधर उधर दौड फिरते हैं चित्त बल्लियों उछलने लगता है। जब कोई सम्पत्ति स्थायी रूप से प्राप्त हो जाती है तो उसका अहङ्कार चढआता है उसे ऐसा मालूम पड़ता है मानो मैं साधारण मनुष्यों की अपेक्षा सैंकडों गुना भारी हूँ। वैभव के मद में वह इतराता है, दूसरों का अपमान करके अपनी महत्ता का प्रदर्शन करता है।

ऐसे अहङ्कार के नशे में मद होश बड़े हुए लोगों को अपनी प्रेस्टेज — पोजीशन — मान — बढाई — बडप्पन — खातिर की बडी चिन्ता रहती है। इसके लिए हर काम में बहुत अधिक फिजूल खर्ची करनी पडती है। उस फिजूल खर्ची की सामिग्री को जुटाने के लिए अनुचित साधन जुटाने पडते हैं, अनेकों प्रकार की बुराई ओढनी पडती है। इस प्रकार एक तो अहङ्कार के नशे की जलन, दूसरे उस नशे को आकुलतायें मन में कुहराम मचाये रहती है और दुख प्रधान आवेशों से अन्तःकरण में जैसी अशान्ति रहती है वैसी ही सुख प्रधान आवेशों में भी उत्पन्न हो जाती है। इन दोनों से ही बचना आवश्यक है। दोनों मे ही स्वास्थ्य एवं विवेक की क्षति होती है। गीता आदि शास्त्रों में इसी लिए दोनों प्रकार के आवेशों द्वन्दों से दूर रहने का जोरों से प्रति पादन किया गया है।

जीवन को समुन्नत देखने की इच्छा करने वालों के लिए यह आवश्यक है कि अपने स्वभाव को गम्भीर बनवें। उथलेपन, लडकपन, छिछोर पन की जिन्हें आदत पड जाती है वे गहराई के साथ किसी विषय में विचार नहीं कर सकते। किसी समय मन को गुद गुदाने के लिए बाल क्रीड़ा की जा सकती है पर वैसा स्वभाव न बना लेना चाहिए। आवेशों से बचे रहने की आदत बनानी चाहिए जैसे समुद्र तट पर रहने वाले पर्वत, नित्य टकराते रहने वाली समुद्र की लहरों की परवा नहीं करते। इसी प्रकार अपने को भी उद्वेगों की उपेक्षा करना चाहिए। खिलाडी खेलते हैं, कई बार हारते हैं, कई बार जीतते हैं। कई बार हारते हारते जीत जाते हैं कई बार जीतते जीतते हार जाते हैं। कभी कभी बहुत देर हार जीत के झूले में यों ही झूलते रहते हैं। परन्तु कोई खिलाडी उसका अत्यधिक असर मन पर नहीं पडने देता। हारने पर कोई सिर धुन कर क्रन्दन नहीं करता और जीतने पर न कोई अपने को बादशाह मान लेता है। हारने वालों के होटों पर झेंप भरी मुस्करा हट होती है और जीतने वाले के होटों पर जो मुस्कराहट रहती है उस में सफलता की प्रसन्नता मिली होती है। इस थोड़े से स्वाभाविक भेद के अतिरिक्त और कोई विशेष अन्तर जीते हुए तथा हारे हुए खिलाडी में नहीं दिखाई पडता। विश्व के रङ्ग मञ्च पर हम सब खिलाडी हैं। खेलने में रस है, वह रस दोनों दलों को समान रूप से मिलता है। हार जीत तो उस रस की तुलना में नगण्य चीज है।

सच्चा धर्म क्या है ?

(ले०—कुमारी प्रेमलता जैन मुजफ्फर नगर)

उन उलझे हुये प्रश्नों में से जो मानव को आज चारों ओर से घेरे हैं, एक प्रश्न यह भी है कि संसार में सच्चे धर्म की परिभाषा क्या है ? अथवा यों कहिए कि कौन सा धर्म सच्चा है ?

मेरे विचार में धर्म की सचाई की खोज करना अज्ञानता का द्योतक है : "धर्म तो स्वयं एक सत्य है ।" जहां सत्य है वहीं धर्म है । इस दृष्टिकोण से विश्व के समस्त धर्म सच्चे और पूज्यनीय हैं । चाहे वह क्रिश्चियन मत हो, चाहे हिन्दू, चाहे इस्लाम चाहे बौद्ध अथवा जैन, समस्त धर्मों का आधार एक है, समस्त धर्मों का ध्येय अथवा उद्देश एक है, अन्तर है केवल साधन में तथा मार्ग में । इस दृष्टिकोण से विरुद्ध धर्मावलम्बी जातियों का परस्पर लड़ना आदि देख कर अत्यधिक श्रद्धा होती है । पाश्चात्य सभ्यता के विस्तार ने मानव की बुद्धि शक्ति को भी हरण कर लिया है तभी हम धर्मों की सचाई के निर्णय में भूल करते हैं ।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए, कि अँग्रेजों में यदि वह न्यूनता है, कि वे भौतिक उन्नति के पीछे हाथ धोकर पड़े हैं, तो वह उनके व्यक्तिगत लाभ का कारण है, न कि उनके ईसा उन्हें ऐसा करने का उपदेश दे गये थे, मुसलमानों की कठोरता एवं निर्दयता उनके खान पान का प्रभाव है न कि इस लिये कि मुहम्मदसाहब उन्हें निर्दय होना धर्म का पालन स्वरूप बना गये थे और इसी प्रकार हिन्दुओं के ढोंग उनकी संकीर्णता एवं अज्ञानता का फल है न कि कृष्ण अथा राम अथवा बुद्ध अथवा महावीर स्वामी उन्हें इस प्रकार का उपदेश दे गये थे। सभी धर्म प्रचारकों का एक मत है—"अहिंसा, सत्य, परोपकार, शील एवं मृदुवाणी यह धर्म के पाँच प्रमुख अंग हैं ।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि समस्त धर्मों का आधार एक है, केवल उनके बाह्य स्वरूप में थोड़ा अन्तर है । परन्तु केवल बाह्य अन्तर पर ही दृष्टपात करते हुए हमें धर्मों की उपेक्षा न करनी चाहिये । मन्दिर के सम्मुख जाते जिस प्रकार हम नतमस्तक हो जाते हैं, उसी प्रकार मसजिद अथवा गिरजा घर के सामने भी हमें श्रद्धा से मस्तक झुका देना चाहिए। क्या मन्दिरों के ईंट पत्थर गिरजाघर और मसजिद के कङ्कड़ पत्थर से भिन्न हैं ? अथवा क्या उन सभी पावन स्थानों के कण कण में उन महान् आत्माओं की मधुर वाणी एक स्वर से नहीं गूंज रही है ? क्या वे महान् आत्मायें धर्म के अन्तर के कारण मानव में भी अन्तर करते थे।

वे तो थे मानव धर्म के अनुयायी। जिसे हम अपनी अज्ञानता के कारण शृंखलाओं में विभक्त कर लेते हैं । और फिर उनकी भी उप—शृंखलायें कर लेते हैं । यह तो मानव का कर्तव्य नहीं है और मनुष्य के अपरिमित ज्ञानकी यही चरम सीमा है, कि वह धर्म के सत्य स्वरूप को हृदय प्रदेश में न खोज कर विश्व प्रदेश में पाने की चेष्टा करता है ?

श्रीरामकृष्ण परमहँस ने एक स्थान पर कहा है:—"जो मनुष्य की विकार रहित आत्मा को ईश्वरत्व में परिणित कर देता है, जीव के चिरानन्द में विलीन हो जाने का मार्ग बताता है—वही है सच्चा धर्म और वही है सत्य का नग्न स्वरूप—इसके आगे कहीं कुछ नहीं है ।"

इस प्रकार यदि हम अपने हृदय की पवित्रतम भावनाओं को एकाग्र कर उसे परम प्रभु का ध्यान करें—तो वही कभी कृष्ण के रूप में, कभी मर्यादा पुरुषोत्तम राम के रूप में, कभी बुद्ध, कभी ईसा कभी मुहम्मद और कभी महावीर के रूप में दृष्टि गोचर होता है । इस प्रकार हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि धर्मों का सच्चा स्वरूप सत्य है। सत्य की स्थापना के लिए ही धर्म का विस्तार हुआ है।

गौ रक्षा-कीजिए।

(महात्मा गाँधी)

—:—

मेरी दृष्टि में तो गौ-रक्षा मनुष्य-जाति के विकास में एक अद्भुत चमत्कारीपूर्ण घटना है। यह मनुष्य-प्राणी को उसकी स्वाभाविक मर्यादा के ऊपर ले जाती है। मुझे तो गाय मानो मनुष्य-जाति से नीचे की सम्पूर्ण सृष्टि नजर आती है। गाय के द्वारा मनुष्य प्राणीमात्र के साथ अपने तादात्म्य के अनुभव का अधिकारी होता है मुझे तो यह स्पष्ट दिखाई देता है कि गाय ही अकेली क्यों देवता मानी गई है। हिन्दुस्तान में गाय से बढ कर मनुष्यों का साथी दूसरा कोई नहीं। उसने बहुतेरी वस्तुएं हमें दी हैं। उसने हमें केवल दूध ही नहीं दिया है। बल्कि हमारी खेती का भी सारा आधार उसी पर है। गाय तो एक मूर्तिमती करुणामयी कविता है। इस नम्र प्राणी में करुणाही करुणा दिखाई देती है। भारत के लाखों मनुष्यों की वह माता है। गो-रक्षा का अर्थ है—ईश्वर की सम्पूर्ण मूक सृष्टि की रक्षा। लेकिन प्राचीन ऋषियों ने फिर वो चाहे कोई हों, आग का ही, श्री-गणेश किया। सृष्टि की नीची श्रेणी के प्राणियों को वाक्शक्ति नहीं है। इस लिए उनकी अपील में सबसे अधिक बल है। गो-रक्षा संसार को हिन्दू धर्म का दिया हुआ प्रसाद है। और तब तक हिन्दू धर्म जीवित रहेगा जब तक हिन्दू लोग गो रक्षा करने के लिए मौजूद हैं।

गो रक्षा करने का मार्ग है—उसके लिए स्वयं मर मिटना। हिन्दू धर्म और अहिंसा यह आज्ञा नहीं देते कि गो-रक्षा के लिए किसी मनुष्य प्राणी का बध करो। हिन्दुओं को तो तपस्या,आत्म-शुद्धि और स्वार्थ त्याग के द्वारा गो-रक्षा करने का आदेश दिया गया है। आज कल की इस गो-रक्षा ने मुसलमानों के साथ ऐक चिरस्थायी शत्रता का रूप धारण कर लिया है, हालां कि गो-रक्षा का अर्थ तो

एक मुसलमान मित्र ने कुछ समय पहले, मुझे एक पुस्तक भेजी थी उसमें सविस्तार रूप से यह बताया गया था कि हम लोग गाय के और उसका सन्तान के साथ कैसा अमानुष व्यवहार करते हैं। हम किस बेरहमी के साथ खून टपकने तक उसे दुहते हैं। एक बूंद तक दूध उसके थन में नहीं रहने देते! किस तरह हम उसे भूखों मार मार कर सुखा देते हैं। उसके बछड़ों के साथ कैसा दुर्व्यवहार करते हैं। किस तरह हम उसके पल्ले नही पड़ने देते! बैलों के साथ किस निष्ठुरता से पेश आते हैं। किस तरह हम उन्हें बधिया करते हैं। किस तरह हम उन्हें पीटते और कितना सारा बोझ उन पर लादते हैं! अगर उन्हें बोलने की शक्ति होती तो वे उनके प्रति किये हमारे अपराधों का बयान इस तरह अपने मुंह से करते कि सारी दुनियां दहल उठती। अपने चौपायों के प्रति अपने एक एक निर्दयता-पूर्ण कार्य के द्वारा मानो हम ईश्वर का और हिन्दू-धर्म का त्याग कर रहे हैं! इस अभागे भारतवर्ष में चौपाये की जितनी बुरी दशा है उतनी मैं नहीं जानता कि दुनियां के किसी दूसरे देश में होगी। हम अँग्रेजों को इस के लिये दोषी नहीं बता सकते। अपने इस अपराध के लिए हम दरिद्रता की दुहाई नहीं दे सकते। हमारे चौपायों की दुर्दशा का एक मात्र कारण है हमारी अक्षम्य-लापरवाही। हां, हमारे पिञ्जरापोलें हैं वे हमारे दया भाव की तृप्ति का साधन भी हैं, परन्तु हैं वे उन दयायुक्त कार्यों के बेढङ्गे प्रदर्शन ही। वे नमूना-रूप दुग्ध-शाला और महान् लाभदायक राष्ट्रीय संस्था होने के बजाय केवल अपाहिज और निर्बल गायों का एक संग्रह स्थान भर है।

हिन्दुओं की पहचान न तो उनके तिलकों से होगी, न उनके मन्त्रों के शुद्ध धोष से, न उनके तीर्थाटन से और न जाति बन्धन के नियमों के अत्यन्त शिष्टाचार युक्त पालन से ही होगी! बल्कि उनकी पहचान तो उनके गो-रक्षा के सामर्थ्य से होगी। हम गो-रक्षा को अपना धर्म मानने का दावा तो बडा करते हैं; लेकिन वास्तव में तो हमने

धन संचय की तृष्णा ।

(पं० शिवशर्मा, दरबै)

परमात्मा ने मनुष्य मात्र को एक समान सुविधाऐं दी हैं। इससे प्रकट है कि परमात्मा सब को एक समान सुखी देखना चाहता है। हवा, धूप, पानी, सर्दी, गर्मी, वर्षा आदि सभी वस्तुऐं समान रूप से सब को वितरण की गई है। धरती माता की गोद में, नील आकाश के नीचे हम सब को स्वच्छन्दता पूर्वक विचरने और जीवित रहने की सुविधा है। घास की हरियाली, झरने का कलगान, नदी, पर्वत और बादलों के मनोहर दृश्य हम सभी के लिए खुले हुए हैं। भूख, प्यास, नींद, शरीर रक्षा आदि की आवश्यकताओं को पूरा करने के इतने साधन इस विश्व में, विश्वपति ने पैदा कर रखे हैं कि हम सुविधा पूर्वक जीवन यापन कर सकें। परमात्मा समदर्शी है वह चाहता है कि हम सब सुखी रहें, सुख पूर्वक जियें।

परन्तु हम देखते हैं कि आज मनुष्य ने परमात्मा की उस पुनीत इच्छा के विरुद्ध बगावत खडी रखी है। जिसमें चतुरता एवं शक्ति की तनिक भी अधिकता है वह कोशिश करता है कि मैं संसार की अधिक से अधिक सुख सामिग्री अपने कब्जे में करलूँ अपनी इस हविस को पूरा करने के लिए वह अपने पडौसियों के अधिकारों के ऊपर हमला करता है और उनके हाथ की रोटी, मुख के ग्रास छीन कर खुद मालदार बनता है।

एक आदमी के मालदार बनने का अर्थ है अनेकों का क्रन्दन अनेकों का शोषण, अनेकों का अपहरण। एक ऊँचा मकान बनाया जाय तो उसके लिए बहुत सी मिट्टी जमा करनी पड़ेगी और जहां जहां से वह मिट्टी उठाई जायगी वहां वहां गड्ढा पडना निश्चत है। इस संसार में जितने प्राणी हैं उसी हिसाब से वस्तुऐं भी परमात्मा उत्पन्न करता है। यदि एक आदमी अपनी जरूरत से अधिक वस्तुऐं जमा करता है तो इसका अर्थ— दूसरों की जरूरी चीजों का अपहरण ही हुआ। गतद्वतीय महायुद्ध में सरकारों ने तथा पूंजी पतियों ने अन्न का अत्यधिक स्टाक जमा कर लिया, फलस्वरूप दूसरी जगह अन्न की कमी पड गई और बङ्गाल जैसे प्रदेशों में लाखों आदमी भूखे मर गये गतशताब्दी में ब्रटेन की धन सम्पन्नता भारत जैसे पराधीन देशों के दोहन से हुई थी। जिन देशों का शोषण हुआ था वे बेचारे दीनदशा में गरीबी, बेकारी, भुखमरी और बीमारी से तबाह होरहे थे।

वस्तुऐं संसार में उतनी ही हैं, जिससे सब लोग समान रूप से सुख पूर्वक रह सकें। एक व्यक्ति मालदार बनता है तो यह हो नहीं

गुलाम बना डाला है और खुद भी गुलाम हो गये हैं।

अब यह बात समझ में आ जायगी कि मैं क्यों अपने को सनातनी हिन्दू समझता हूँ। गो के प्रति जो मेरी श्रद्धा है उसमें मैं किसी से हारने वाला नहीं। मैंने खिलाफत के कार्य को जो अपना कार्य बनाया था उसका सबब यही था कि उसकी रक्षा के द्वारा मुझे गाय की पूरी तरह रक्षा होने की सम्भावना दिखाई देती थी। मैं मुसलमान भाइयों से यह नहीं कहता कि मेरी इस सेवा के खातिर वे गाय की रक्षा करें। मैं तो उस सर्व शक्तिमान परमात्मा से ही नित्य यह प्रार्थना करता हूँ कि जिस कार्य को मैंने न्याय समझा है उसके निमित्त की गई मेरी सेवा तेरी इतनी प्रसन्नता का कारण हो कि जिससे तू मुसलमानों के हृदयों को बदल दे उन्हें अपने हिन्दू भाइयों के प्रति दया-भाव से परिपूर्ण कर दे और उनके द्वारा उस प्राणी की रक्षा करा, जिसे हिन्दू लोग अपने प्राणों की तरह प्यारा मानते हैं।

पड़े। यह महान् सत्य हमारे पूजनीय पूर्वजों को भली भांति विदित था इस लिए उन्होंने मानव धर्म में अपरिग्रह को महत्व पूर्ण स्थान दिया था। वस्तुओं का कम से कम संग्रह करना यह भारतीय सभ्यता का आदर्श सिद्धान्त था। ऋषि गण कम से कम वस्तुएँ जमा करते थे। वे कोपीन लगा कर फूंस के झोंपडों में रह कर गुजारा करते थे। जनक जैसे राजा अपने हाथों खेती करके अपने परिवारिक निर्वाह के लायक अन्न कमाते थे। प्रजा का सामूहिक पैसा—राज्य कोष – केवल प्रजा के कामों में खर्च होता है। व्यापारी लोग अपने को जनता के धन का ट्रष्टी समझते थे। और जब आवश्यकता पडती थी उस धन को बिना हिचकिचाहट के जनता को सौंप देते थे। भाम शाह ने राणा प्रताप को प्रचुर संपदा अर्पण की थी। जनता की थाती को, जनता की आवश्यकता के लिए बिना हिचकिचाहट सौंप देने के असंख्यों उदाहरण भारतीय इतिहास के पन्ने पन्ने पर अङ्कित हैं।

आज का दृष्टिकोण दूसरा है। लोग मालदार बनने की धुन में अन्धे हो रहे हैं। नीति अनीति का, उचित अनुचित का, धर्म अधर्म का प्रश्न उठाकर ताक में रख दिया गया है और यह कोशिसें होरही हैं कि किस प्रकार जल्द जल्द से जल्द धनपति बन जाय! धन!! अधिक धन!!! जल्दी धन! धन!! धन!!! इस रट को लगाता हुआ, मनुष्य होश हवास भूल गया है। पागल स्यार की तरह धन की खोज में उन्मत्त सा होकर चारों ओर दौड रहा है।

इस पागल पन ने संसार को अशांति एवं विक्षुब्ध बना दिया है। इस सत्यानाशी तृष्णा ने जीवन को बडा विषम, जटिल, कर्कश एवं निम्न कोटि का बना दिया है। जैसे बने वैसे जल्दी से जल्दी धनी बनने की धुनने चारों ओर अनैतिकता फैलादी है। बाजार में जाइए—दूध में पानी, घी में वेजीटेबिल, मिलेगा। झांसी जिले के एक कस्बे में अभ्रक कह रबेचने के लिए चक्कियों से गेरू पिसता है। शहद के नाम से चासनी मिल सकती है। बाजार के खाद्य पदार्थों की शुद्धता प्रायःअविश्वासनीय हो गई है। वकीलों को झूँठे मुकदमे की वकालत करते हुए हम देखते हैं। मामूली बुखार को तपेदिक बताकर रोगी को भयभीत करके उसके थाली बर्तन बिकवा लेना आज के डाक्टरों का बांऐ हाथ का खेल है, चार पैसे की झूठी घडी को 'एक सा टायम देने वाली असली घडी" बता कर मनमाने दाम वसूल करने वाले विज्ञापन बाज अखबारों में विज्ञापन छपाते हैं और हजारों भोले आदमियों को लूटते हैं; ठगी, धोखा, कपट,मायाचार, असत्य, आज चातुर्य में गिना जाने लगा है। चोरी डाँका, लूट, ठगी, उठाईगीरी शोषण, अपहरण के ऐसे ऐसे नित नये विचित्र तरीके निकलते आते हैं जिन्हें देख कर बुद्धि हैरान हो जाती है। इन हथकंडों के कारण मानव जाति का शारीरिक मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य जीर्ण शीर्ण हो चला है। विवाह शादी जैसे पुनीत धार्मिक कृत्य में दहेज की दुकानदारी होती है। ईश्वर तक को रिश्वत देकर मन मर्जी की सुविधा लेने का लोग दम भरते हैं। धर्मोपदेश एक पेशा बन गया है यह सब हमारे अध्यात्मिक स्वास्थ्य के पतन का प्रमाण है।

पाप एक छूत की बीमारी है। जो एक से दूसरे को लगती और फैलती है। एक को धनी बनने के लिए यह अन्धा धुन्धी मचाते हुए देख कर और अनेकों की वैसी इच्छा होती है। अनुचित रीति से धन जमा करने वाले लुटेरों की संख्या बढती है—फिर लुटने वाले और लूटने वालों में संघर्ष होता है। उधर लूटने वालों में प्रतिद्वन्दता संघर्ष होता है। इस प्रकार तीन मोर्चों पर लडाई ठन जाती है। गत तीस वर्षों में इसी लडाई में ससार दो बार रक्त स्नान कर चुका है। करोडों मनुष्यों के रक्त से धरती लाल हो चुकी है। महायुद्ध बन्द हो गये हैं पर उसका छोटा रूप हर जगह देखने को मिल सकता है। घर घर में गांव गांव में जाति में वर्ग वर्ग में तनातना हो रहा है। जैसे बने वैसे जल्दी

से जल्दी धनी बनने, व्यक्तिगत सम्पन्नता को प्रधानता देने, का एक ही निश्चित परिणाम है- कलह। जिसे हम अपने चारों ओर ताण्डव नृत्य करता हुआ देख रहे हैं।

इस गतिबिधि—को जब तक मनुष्य जाति न बदलेगी तब तक उसकी कठिनाइयों का अन्त न होगा। एक गुत्थी सुलझने न पावेगी तब तक नई गुत्थी पैदा हो जायगी। एक संघर्ष शान्त न होने पावेगा तब तक नया संघर्ष आरम्भ हो जावेगा। न लूटने वाला सुख की नींद सो सकेगा न लुटने वाला चैन से बैठेगा। एक का धनी बनना. अनेकों को मन में ईर्षा की, डाह की, जलन की आग लगाना है। यह सत्य सूर्य सा प्रकाशवान् है कि एक का धनी होना अनेकों कोगरीब रखना है। इस बुराई को रोकने के लिए हमारे पूर्वजों ने अपरिग्रह का स्वेच्छा स्वीकृत शासन स्थापित किया था। आज की दुनियां राज सत्ता द्वारा समाजवादी प्रणाली की स्थापना करने जा रही है।

वस्तुतः जीवन यापन के लिए एक नियत मात्रा में धन की आवश्यकता है। यदि लूट खसोट बन्द हो जाय तो बहुत थोड़े प्रयत्न से मनुष्य अपनी आवश्यक वस्तुएं कमा सकता है। शेष समय में विविधि प्रकार की उन्नतियों की साधना की जा सकती है। आत्मा मानव शरीर को धारण करने के लिए जिस लोभ से तैयार होती है, प्रयत्न करती है है, उस रस को अनुभव करना उसी दशा में सम्भव है जब धन सचय का बुखार उतर जाय और उस बुखार के साथ साथ जो अन्य अनेकों उपद्रव उठते हैं उनका अन्त हो जाय।

परमात्मा समदर्शी है। वह सब को समान सुविधा देता है। हमें चाहिए कि भौतिक पदार्थों का उतना ही संचय करें जितना उचित रीति से कमाया जा सके और वास्तविक आवश्यकताओं के लिए काफी हो। इससे अधिक सामिग्री के संचय की तृष्णा न करें क्यों कि यह तृष्णा ईश्वरीय इच्छा के विपरीत तथा कलह उत्पन्न करने वाली है। आप शायद विश्वास न करें पर सत्य यही है कि परिग्रही से अपरिग्रही अधिक सुखी रहता है। ———

एक समय में एक काम!

यह स्वर्णिम सिद्धांत हर एक को सदा याद रखना चाहिए कि एक समय में एक काम करेंगे। जब भोजन करना हो तो सारी चित्तवृत्तियों को एकत्रित करके सामने परोसे हुए भोजन के मधुर स्वाद का आस्वादन करते हुए. उसके स्वास्थ्यप्रद गुणों का स्मरण करते हुए, प्रसन्न पूर्वक उसे उदरस्थ करना चाहिए। जब बाल बच्चों में खेलना हो तो सारी दिलचस्पी से उनकी मधुर बातें सुनो और अपनी कहो, जब हिसाब--किताब करने बैठो तो पूरे अर्थ शास्त्री बन जाइए। जब भजन का समय आवे तो सम्पूर्ण एकाग्रता उसी कार्य में होनी चाहिए। खेलते समय पक्के खिलाडी और भाषण काल में प्रभावशाली वक्ता होना आवश्यक है और यह तभी हो सकता है,जब चित्त स्थिर हो वह कूद-फांद न सके वक्ता किसी अच्छे विषय पर भाषण देते हैं, पर बीच-बीच में उनकी प्रवाह श्रृङ्खला टूट जाती है। अभी एक बात की व्याख्या कर रहे थे। वह बात पूरी न हो पाई कि दूसरी बात चल पडी और फिर वह भी अधूरी रह गई। इस प्रकार अनेकों अधूरी बातों से भरा हुआ भाषण एक बकवास मात्र रह जाता है। इस अधूरे पन के दोष के कारण कितने ही वक्ताओं की वक्तृत्व शक्ति का, मानत्व नष्ट हो जाता है। यह दोष चित्त को अस्थिरता का प्रतीत है। बेचारा वक्ता मन को एक स्थान पर केन्द्रीभूत रखने की कला से अनभिज्ञ होने के कारण मन के पीछे--पीछे इधर—उधर भागता फिरता है और अपना उपहास कराता है।'

चञ्चल चित्त वाला व्यक्ति सदा असावधान भुलक्कड़ एवं गलती करने वाला होता है। इन दोषों वाला डाक्टर अपने रोगी के लिए एक खतरा हो सकता है। ऐसा व्यापारी भारी घाटे के चक्कर में फँस सकता है। ऐसा वकील मुकदमे को हरा सकता है। ऐसा विद्यार्थी फेल हो सकता है।

सद्भावना से कार्य करें।

[श्रीमती चन्द्रकान्ता जेरथ, बी०ए० दिल्ली]

कई बार ऐसा देखा जाता है कि मनुष्य अपनी समझ के अनुसार भलाई की दृष्टि से किसी काम को करता है उसकी इच्छा शुभ परिणाम प्राप्त करने की होती है इस पर भी ऐसी बात सामने आजाती है कि परिणाम विपरीत होता है। जिन लोगों के हित के लिए वह कार्य किया था वे उसे अहित कर मानते हैं और अप्रसन्न होते हैं।

इस प्रकार के अवसर आने पर एक मानसिक अशान्ति की गड़बड़ी उत्पन्न होती है। उस कार्य को करने वाला सोचता है कि मैंने शुभ परिणाम की इच्छा से, सद्भावना से यह कार्य किया, पर मुझे उलटा निन्दा और विरोध का भागी बनना पड़ा। इस प्रतिकूलता के लिए वह अपने आप को परिस्थिति को दैवी विधान को और दूसरों की असहिष्णुता को कोसता है। दूसरी ओर जिन लोगों को वह कार्य ना पसन्द रहा वे उसे मूर्ख ठहराते हैं या उसकी सद्भावना पर सन्देह करते हैं। इस प्रकार दोनों ओर मनोमालिन्य उत्पन्न होता है।

इस उभय पक्षीय मनोमालिन्य का कारण— कर्म विज्ञान का अज्ञान है। हमें भली प्रकार समझ रखना चाहिए कि किसी कार्य का इच्छित परिणाम हो ही यह आवश्यक नहीं है। कई बार शुभ इच्छा से किये हुए कार्यों का परिणाम अशुभ भी होता देखा जाता है और अशुभ इच्छा से किये कार्य शुभ फल दायक भी हो जाते हैं। विवेकशील व्यापारियों को दिवालियां बनने और भौंदू लोगों को लक्षाधीश बनने के अनेकों उदाहरण मिल सकते हैं।

दुनियां उसे बुद्धिमान् कहती है जिसकी सूझ के कारण लाभ दायक फल निकलता है और जो निशाना चूक जाता है वह बेवकूफ कहा जाता है। पर यह दृष्टि कोण बहुत ही अधूरा है। सफलता में भाग्य, अवसर, परिस्थिति, वातावरण, घटनाक्रम, दूसरों का सहयोग आदि अनेक कारण होते हैं। इतनी सब बातें जुटाना मनुष्य के हाथ की बात नहीं है। वह तो अपनी समझ के अनुसार, शुभ विचार और शुभ कार्य के लिए कर्तव्य पालन कर सकता है। अनुकूल प्रतिकूल परिणाम तो दैवाधीन है।

यह भी नहीं कहा जा सकता कि मनुष्य की सूझ सर्वदा ठीक ही होती है। मानवीय मस्तिष्क अपूर्ण है, बहुत दूर तक, अन्तिम परिणाम तक, दृष्टि फेंकने की शक्ति उसमें नहीं है। जो बात इस घड़ी बिलकुल ठीक जँचती है वह कुछ समय बाद गलत जंच सकती है। महात्मागांधी ने राज कोट में अनशन किया। पीछे उन्हें मालूम हुआ कि यह मेरी भूल थी, मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था। इस प्रकार के अवसर अन्य व्यक्तियों के जीवन में भी आते रहते हैं। वे जो सोचते या निर्णय करते हैं कुछ समय बाद प्रतीत होता है कि वह भूल थी। वैसा नहीं करना चाहिए था। मनुष्य का अपूर्ण मस्तिष्क सदा सही निर्णय ही करे यह आशा करना व्यर्थ है।

काम करने के सम्बन्ध में एक बात मनुष्य के पूर्णतया हाथ में है वह यह कि उसकी नीयत साफ हो, हृदय शुद्ध है। भावना पवित्र हो। शुभ कामना और सद्भावना से काम करना यह उसका आवश्यक कर्तव्य है यदि उसकी नीयतसाफ है तो उसके कार्यों का मूल्य भी सद्भावना से आंका जाना चाहिए फिर चाहे उस कार्य का परिणाम हानि कारक या असुविधा जनक ही क्यों न हुआ हो। इसी प्रकार यदि किसी मनुष्य ने बुरी नीयत से कोई कार्य किया हो तो उसका मूल्य बुराई में आंका जाना चाहिए फिर चाहे संयोग वश उस बुरे कार्य से कोई लाभ दायक परिणाम ही क्यों न मिल गया हो।

गीता की यही शिक्षा है कि "कर्म फल की ओर मत देखो वह तुम्हारे हाथ में नहीं है। तुम तो

प्रभावशाली व्यक्तित्व।

(प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०)
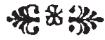
समाज के नित्य प्रति के व्यवहारमें भिचेरसे रहना अपनी बात न कह सकना, या मन मसोस कर रह जाना भी एक भयङ्कर मानसिक व्याधि है। एक ऐसे कमरे की कल्पना कीजिए, जो चारों ओर से बन्द हो। जिसमें वायु, प्रकाश इत्यादि के प्रवेश के सम्पूर्ण मार्ग अवरुद्ध हैं ; जो व्यक्ति हँस खेल कर आत्म प्रकटीकरण नहीं कर पाता, उसकी दशा ऐसी ही है। वह समाज में आदर का पात्र नहीं बन पाता।

आज के मनुष्य का जीवन इतना व्यस्त है कि उसे दम मारने का अवकाश नहीं। दफ्तर में सम्पूर्ण दिन भिन्न भिन्न कार्यों में व्यतीत हो जाता है। दूकानों पर ग्राहकों को बनाने में बहकी बहकी बातें करनी पड़ती है। हृदय खुल नहीं पाता। मनुष्य में हृदय रूपी पुष्प की सब पँखुरिये पूर्ण विकसित नहीं हो पाती, बन्द की बन्द रह जाती हैं। उनके हृदय में अनेक मन्तव्य, विचार धाराएँ, अनुभव, प्रकाश में आने की प्रतीक्षा देखा करते है। यदि वे विचार प्रकट न हों, तो मनुष्य के जीवन में एक अजीब थकान, आलस्य, नीरसता, एवं शुष्कता सी आ जाती है। आत्म-प्रकटीकरण व्यक्तित्व के विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक तत्व है।

पवित्र हृदय से अपना कर्तव्य करो। कर्म निस्वार्थ भाव से करो।" शुभ भावना से किया हुआ कर्म शुभ है और अशुभ भावना से किया हुआ कर्म अशुभ। इसी दृष्टिकोण से हमें अपने तथा दूसरों के कार्यों को परखना चाहिए। कर्म रहस्य को समझने वाला फल की निन्दा स्तुति करने की अपेक्षा कर्ता की भावना को टटोलता है। जहाँ यह कर्मयोगी दृष्टि कोण होगा वहाँ सदा शान्ति विराजती रहेगी।

इपिक्टेशिश कहा करते थे, मनुष्य को अपनी बातें कहने दो, तुम देखोगे, कि हममें से प्रत्येक के पास अनुभवों, विचारों, मन्तव्यों के विशाल ग्रन्थ प्रकाश में आने की बाट जोह रहे हैं। वास्तव में अपनी विगत घटनाएँ सुना सुना कर मनुष्य दूसरे की सहानुभूति प्राप्त करने का भूखा है। वह चाहता कि कोई उसकी अपनी दुनियां में झांक कर देखे। उसकी प्रसन्नता आह्लाद में रस लें, दुखों कष्टों एवं वेदनाओं के प्रति सहानुभूति प्रकट करें, उसकी उमङ्गों के प्रति समस्वर रहें, वह जो कुछ कहता है, सुनें समझें तथा अन्य व्यक्तियों को उसी के गुण स्वभाव का बनाये। आत्म प्रकटीकरण के मुख्यतः दो ही उद्देश्य हो सकते है। १—अपनी कही बातें सुना कर दूसरे की सहानुभूति प्राप्त करना। २—दूसरे को अपनी विचार धारा का बनाना, उस पर अपनी मोहनी शक्ति डालना वश करना। व्यक्तित्व के निर्माण में यह दूसरा उद्देश्य प्रमुख है। जब तक आप दूसरे के मन में अपना दृष्टिकोण ठीक तरह न बिठलायेंगे तब तक वह आप जैसी विचार धारा का कैसे बनेगा ?

आप स्वयं ही दूसरों पर प्रभाव डाल सकते हैं। दूसरे आपके विषय में कुछ भी कहते रहें, यदि आप में व्यक्तित्व के निर्माण के गुण हैं, तो अन्य कोई कुछ भी नहीं कर सकता। सर्व प्रथम आपका आत्म विश्वास है। आत्म श्रद्धा ही वह प्रभावशाली शस्त्र है, जो आपके चेहरे को पौरुष से पूर्ण बनाता है, नेत्रों को चमका देता है, तथा अनुपम तेज से युक्त बनाता है। अधिक से अधिक व्यक्तियों में मिलिये और चुपचाप अपनी आत्मश्रद्धा को बढ़ाइये। श्रद्धा ही बाह्य एवं अन्तरंग अवस्था एक सी बनाती है। आत्मश्रद्धा ही उत्पादक शक्ति रचनात्मक तत्वों की जननी है। आप यह मानिये कि आप धीरे २ मजबूत बन रहे हैं, उन्नति करते जा रहे हैं, लोगों को अपने स्वभाव तथा रुचि का बना रहे हैं। इसी प्रकार विश्वास दृढ होने पर आपके

अणुपरिमाण में एक नया प्राणमय प्रवाह उत्पन्न हो जायगा।

प्रिय पाठक! उठिये और मानसिक आलस्य को त्याग कर साहस वरतिये। डरिये नहीं। कोई भी तुम्हारा कुछ अहित नहीं कर सकता। आप एक निश्चित उद्देश्य लेकर निरन्तर साधना में लग जाइये, उसी को पूरा कर अपनी प्रतिभा का परिचय संसार का दीजिये। तुम आत्म विश्वास लेकर जिस क्षेत्र में प्रविष्ठ होगे, वही तुम्हारी प्रतिभा से दीप्तिवान् हो उठेगा।

सदैव नई नई बातें, नया ज्ञान, तथा संसार में होने वाली प्रगति से भिज्ञ रहिये। विद्वानों से वार्तालाप कीजिये, उत्तमोत्तम सद्ग्रन्थों का अवलोकन कीजिये, तथा अद्भुत व्यक्तियों के रहस्यों को जानने का प्रयत्न कीजिये। वे ही गुण अपने व्यक्तित्व में लाने का प्रयत्न कीजिये।

प्रसन्नता, मधुर शब्द और शुभ चिन्तन ये दैवी तत्व हैं जिनसे पाषाण सदृश्य व्यक्ति को भी वश में किया जा सकता है। सत्य धर्म का पालन, दूसरों से सत्य व्यवहार पवित्र चरित्र, ये ऐसे सूत्र हैं, जो अवश्य अपना प्रभाव दिखला कर रहेंगे। उत्तम स्वास्थ्य से जगमगाता हुआ मुख देख कर कौन प्रभावित न होगा।

आत्मिक ज्ञान से मनुष्य अनेक यौगिक तथा मानसिक शक्तियों का स्वामी बन सकता है और दूसरों को अपना हितैषी बना सकता है।

— — —

प्रलोभन और विपत्ति, यही दो मनुष्य के परीक्षा हैं। जो प्रलोभन पर फिसलता नहीं और विपत्ति में विचलित नहीं होता वही वीर पुरुष है।

× × × ×

कठिनाइयां जब आती हैं तो कष्ट देती हैं, पर जब जाती हैं तो आत्म बल का ऐसा उत्तम पुरुस्कार दे जाती हैं जो उन कष्टों दुखों की तुलना में हजारों गुना मूल्यवान होता है।

योग क्या है?

गीता में योग की परिभाषा "योग, कर्मसु कौशलम्" (२-५०) की गई है। दूसरी परिभाषा "समत्वं योग उच्यते" (२-४८) है। कर्म की कुशलता और समता को इन परिभाषाओं में योग बताया गया है। पातिञ्जल योग दर्शन में 'योगश्चित्त वृत्ति निरोधः' (१-१) चित्त की वृत्तियों के निरोध को योग कहा गया है। इन परिभाषाओं पर विचार करने से योग कोई ऐसी रहस्य मय या अतिवादी वस्तु नहीं रह जाती कि जिसका उपयोग सर्व साधारण द्वारा न हो सके। दो वस्तुओं के मिलने को योग कहते हैं। पृथकता वियोग है और सम्मिलन योग है। आत्मा का संबध परमात्मा से जोडना योग होता है।

शरीर विज्ञान की जानकारी और प्रयोग के आधार पर हम स्वस्थता, बलिष्ठता सौन्दर्य, दीर्घ जीवन प्राप्त करते हैं और उनके आधार पर विभिन्न प्रकार की सम्पदाओं को प्राप्त करके तथा भोगने का आनन्द उठाते हैं। इसी प्रकार मनोविज्ञान, मनःशास्त्र, योग की जानकारी और साधना द्वारा मन पुष्ट, बलवान् सुसंस्कृत कुशल, सूक्ष्मदर्शी, सावधान निर्भ्रान्त, बनाया जा सकता है और उसके आधार पर उन सब वैभवों को प्राप्त किया जा सकता है जो मनः शक्ति द्वारा प्राप्त होते हैं। तलवार पास में होना एक चीज है और तलवार को पास रखना और साथ ही चलाना जानना भी दूसरी चीज है। मन तो सभी के पास है पर उसका लाभ दायक प्रयोग करना, योग के आधार पर ही जाना जा सकता है। यह जानकारी सर्व साधारण के लिए आवश्यक है इसलिए योग की शिक्षा भी हर व्यक्ति के लिए जरूरी है, चाहे वह किसी भी स्थिति में क्यों न हो।

योग हमारी दैनिक आवश्यकता है। आरोग्य शास्त्र, आहार शास्त्र, चिकित्सा, शास्त्र रति शास्त्र आदि को जानकर और उनके अनुसार बरतना जिस प्रकार व्यक्ति के लिए जरूरी है, इसी प्रकार मानसिक स्वस्थ। एवं आत्मिक स्वस्थता के लिए योग का जानना और उसका साधन करना आवश्यक है।

विचार स्वातंत्र्य का उत्तरदायित्व

(श्री० डी०आर०कटारहा बी० ए० दमोह)

—— : ——

यद्यपि यह सच है कि स्वयं विचार करने की योग्यता हमें सत्य तत्व के दर्शन कराने में समर्थ है किन्तु शोक की बात है कि आज का मानव संकीर्ण हृदय शासकों और नेताओं के पंजों में फँस कर अपने इस जन्म सिद्धि अधिकार का उपभोग नहीं कर पाता। एक सहस्त्र वर्ष पहिले पाश्चात्य देशों में तो मनुष्यों को बँधी हुई विचार प्रणालियों पर ही चलना पडना था। पृथिवी कोगोल कहने के अपराध में गलीलियो को जेल में सडना पडा और "फ्रांस देश फ्रांस देश वासियों के लिये" का नारा लगाने पर जोन आफ आर्क जीते जी अग्नि में जला दी गई। यूरोप ने इस तरह सहस्त्रों वर्ष रोमन पादरियों के चगुल में फँस कर, अध विश्वास रूपी अँधेरी रात्रि में विताए। किन्तु साधारण जन समुदाय ने तब स्वतन्त्रता की सांस ली जब मार्टिन लूथर ने रोम के पोपों को चुनौती दी, प्रोटेस्टेंट मत बड़े धूम धाम से निकाला। समाज की स्वतन्त्र विचार धारा अनेक धाराओं में से होकर तर निकली और यूरोप में ज्ञान विज्ञान तथा साहित्य आदि की खूब वृद्धि हुई। आज वही यूरोप भौतिक विद्याओं के उच्चतम शिखर पर चढा हुआ नजर आ रहा है। किन्तु फिर भी हम देखते हे कि यूरोप में शान्ति नहीं है। धार्मिक सङ्कीर्णता के स्थान पर आज वहां राजनीतिक सङ्कीर्णता विद्यमान है। भारतवर्ष में भी कांग्रेस और कम्यूनिस्टों में नहीं पटती और न लीग और कांग्रस ही आपस में आसानी से समझौता करती दीखती है। इनके सम्बन्ध में यही कहना उचित जान पडता है कि परस्पर मत भेद होते हुए भी उदार भाव विरोधी दल की विचार प्रणालियों के प्रति सहिष्णु बनने तथा सम्मान करने में ही सब दलों की शोभा है। यदि हमारे अथवा किसी राष्ट्र के लोग अपने देश वासियों की विभिन्न धार्मिक अथवा राजनीतिक विचार-धाराओं को सहन कर उनसे सहानुभूति नहीं रख सकते तो उस राष्ट्र के लोगों में नाजियों और फासिस्टों जैसी क्रूरता और कट्टरता आ जावेगी। वह राष्ट्र विभिन्न तथा परस्पर विपरीत विचार-धाराओं को न पनपने देगा और इस तरह ऐसे राष्ट्र का शासक-वर्ग अपनी भूलों को सुझाने वाला कोई प्रतिद्वन्दी न पाकर निरंकुश हो जावेगा। ऐसी दशा में पता चलेगा कि उस राष्ट्र की नीति में जर्मन राष्ट्र के ही समान घोर पतन के अङ्कुर विद्यमान हैं। इस तरह हम देखते हैं कि यदि कोई राष्ट्र एक ही विचार-प्रणाली को लेकर बढना चाहता है। अथवा साम्प्रदायिकता के नाम पर खडा होना चाहता है तो वह प्रगतिशील नहींकहा जासकता असहिष्णु अनुदारऔर अत्याचारी शासनहोगा वह एक निरङ्कुश शासक की तरह एक ही विचार धारा सब पर लादना चाहेगा। उसमें भिन्न विचार प्रणाली वालों के लिए कोई स्थान ही न होगा, यहां तक कि वह अपने ही अनुयायियों की थोडी सी भी मत भिन्नता सहन नहीं कर सकेगा। ऐसा राष्ट्र सङ्कीर्णता को लेकर खडा होता है, वह एक ही विचार—प्रणाली पर लोगों को चलने के लिये वाध्यकरता है और तबभिन्न विचार-वाले व्यक्तियों की वहीगति होने की संभावना है जो कि मंसूरी की हुई थी।

हम देख चुके हैं कि जहां विचार-स्वातन्त्र्य हमारी जन्म सिद्धि स्वतन्त्रता का एक आवश्यक अवयव है वहां वह नाना प्रकार की विचार प्रणालियों को जन्म देकर संघर्ष का भी कारण है। एक सहस्त्र वर्ष पूर्व का यूरोप, भले ही अँधविश्वास में पड़ कर अपने दिन काट रहा था किन्तु उस समय उसके जीवन में इतना विचार-सघर्ष न था जितना कि आज। उस समय एक ही पोप के धर्म-शासन में सारा यूरोप बजू करता था, उसकी व्यवस्था सब जगह मानी जाती थी और कोई विशेष सैद्धान्तिक गड़बडी न थी किन्तु जिस दिन से पोप की सत्ता सर्वमान्य न रही उस दिन से लोग अपने अपने मन के होने लगे और अपने-अपने सिद्धान्त [illegible]

नहीं कि पोप का वह धर्म शासन अच्छा था! किन्तु इतना लिखने का प्रयोजन यही है कि उसके एकान्त शासन के कारण सिद्धान्तों में एकता थी और व्यवस्था में विशेष कोई गड़बड़ी न थी। अतएव हम देखते हैं कि जहां हमें विचार-स्वातन्त्र्य की आवश्यकता है वहां हमें सैद्धांतिक एकता की भी है; और तभी हम अपने मन में संतुलन प्राप्त कर सुख और शांति-पूर्वक रह सकेंगे। किन्तु हम पहले ही देख चुके हैं कि हम सभी प्रश्नों पर तथा विश्वासों के सम्बन्ध में एक मत नहीं हो सकते। हम सामाजिक प्राणी हैं अतएव हमें सभी बातों के सम्बन्ध में एक मत होने की उतनी अधिक आवश्यकता नहीं जितनी कि उन प्रश्नों पर जिनका कि हमारे सामूहिक जीवन से अत्यन्त निकटस्थ सम्बन्ध है। हम भजन के लिए अकेले एक आसन पर और भोजन के लिए सब को साथ लेकर बैठना पसन्द करते हैं। भजन के लिए अकेले एक आसन पर बैठने की इच्छा जहां हमें आध्यात्मिक मामलों के सोच विचार में स्वतंत्रता प्रदान करती है वहां भोजन के लिए एक साथ बैठने की इच्छा हमारे लिए यह आवश्यकता प्रकट करती है कि हम उन सब मामलों में एक मत होकर रहें जिनका कि हमारे सामाजिक जीवन से सबंध है। इसका यह अर्थ है हमारी संस्कृति हमें यह आदेश देती है कि हम सामाजिक तथा राजनीतिक आदि मामलों में एक सूत्र में बँध कर कार्य करें। "मुँडे मुँडे मतिर्भिन्ना होने के कारण हमारा सामाजिक या राष्ट्रीय जीवन पंगु व विच्छृँखल न होने पावे अन्यथा हम संगठित रूप में कोई कार्य न कर सकेंगे। हमें स्मरण रखना चाहिये कि यदि हम विचार स्वातन्त्र्य के अधिकार का उपभोग करना चाहते हैं तो हमें साथ साथ अपना यह कर्तव्य भी स्वीकार करना होगा कि हम संगठित जीवन व्यतीत करें और एकता के सूत्र में बँध कर रहें। यह सच है कि विचारों की भिन्नता हमें भिन्न भिन्न मार्गों पर चलाने का प्रयत्न करती है किन्तु हमें प्रयत्न करके अपनी परस्पर विरोधी विचार धाराओं के भीतर एक चिरन्तन सत्य की खोज करनी होगी जहां समस्त विभिन्नताएं समन्वित होकर विलीन हो जाती हैं। सत्य एक है और वहीं समस्त विरोधाभासों का अनन्य समन्वय कहा जाता है। इसी अनेकता में एकता और विभक्तों में अविभक्त (अविभक्त विभक्तेषु) को ढूँढना ही हमारा परमकर्तव्य होगा अन्यथा हमारा यह अधिकार हमें उसी तरह नष्ट कर देगा जैसा कि अबोध बच्चे के हाथ में तलवार। अतएव हम जितनी अधिक स्वतंत्रता भोगना चाहते हैं उतना ही अधिक कर्तव्य हमारा इस एकता को प्राप्त करने के लिये हो जाता है। हिन्दू जाति ने इस स्वतन्त्र्य के उपभोग के साथ साथ अपना भी कुछ उत्तर दायित्व है यह न समझा। जिस तरह कि आज अँग्रेज जैसी राष्ट्र भक्त जाति इँग्लैंड के नाम पर सहर्ष आत्मोत्सर्ग करने के लिये तैयार हो जाती है वैसे ही इसने किसी एक नाम या काम पर एक झंडे के नीचे एकत्रित होना न सीखा। इस भूल का परिणाम यह हुआ कि उसमें फूट हो गई और इसका मूल्य हमें स्वतन्त्रता रूपी रत्न को खो कर चुकाना पड़ा। आज हम प्रत्यक्ष ही देख रहे हैं कि हिन्दू जाति विच्छृंखल है और पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ी हुई साँसें भर रही है। वह न तो राम के नाम पर संगठित होकर खड़ी हो सकती है और न कृष्ण के नाम पर। वह तो एक ऐसे जहाज के समान है जो कि एक भयङ्कर समुद्री तूफान से आक्रांत है और जिसके अनेकों बालक उसे भिन्न २ दिशाओं में खेकर ले जाने का प्रयत्न कर रहे हैं। इस स्थिति से बचना है तो हमें नये सिरे से अपनी हर समस्या पर विचार करना सीखना होगा।

× × × ×

इस संसार में कोई भी व्यक्ति न तो पूर्णतः दोषी ही है और न निर्दोष ही। सभी में गुण दोषों के अंश मौजूद हैं, इसलिए पारस्परिक सहन शीलता और उदारता से काम चलाना चाहिये।

पतिव्रत या गुलामी ?

(श्रीमती रत्नेशकुमारीजी नीरांजना, मैनपुरी स्टेट)

पतिव्रत के सम्बन्ध में भारतीय नारी-समाज के दो मत हैं—एक मत वाली तो आर्य-संस्कृति को मानने वाली हैं ; श्रद्धा तथा अटल विश्वास के साथ इसे अपना अनिवार्य कर्तव्य मानती हैं और ऋषियों के प्रति कृतज्ञता हृदय में रखतीं तथा अवसर होने पर प्रकट भी करती हैं कि उनकी आत्मिक उन्नति के हेतु इतना सुगम साधन बता गये। दूसरे मत वाली वे हैं जो इसे गुलामी मानती हैं, उनका विश्वास है कि पुरुष-जाति ने अपने स्वार्थ-साधन हित ही इस धर्म का सृजन किया है ; मनमाना दुर्व्यवहार तथा निर्विरोध शासन करने के हेतु।

मैं दोनों दल वालियों के कथन में थोड़ी-बहुत सचाई की झलक पाती हूं। दोनों के ही तर्कों तथा तथ्यों को किसी न किसी अंश में वास्तविक मानती हूं। मेरे विचार से पतिव्रत धर्म में और गुलामी में उतना ही अन्तर है जितना दासत्व तथा स्वेच्छा सहित की हुई सेवा में रहता है। इस अन्तर को बहुत अधिक भी कह सकते हैं और बहुत कम भी! आप स्वयं विचार देखें।

किन्तु मैं इनकी दो ही श्रेणियां नहीं रखती हूँ एक और भी जोड़ देती हूं। प्रथम स्वयंसेवक, द्वितीय नौकर और तृतीय गुलाम। इनकी परिभाषायें मेरे मतानुसार इस प्रकार हैं—जो सेवा करने को विवश है मन के विद्रोही होने पर भी जिसे किसी कारण वश सेवा करनी ही पड़ती है, वह दास है। जो जहां पर अधिक सुख सुविधा, आराम अरायश मिले वहीं सेवा करने को सारे हृदय से प्रस्तुत है वह नौकर है ; और जो सेवा को अपना अनिवार्य कर्तव्य अथवा धर्म मानकर निष्काम भाव से, फलेच्छा त्याग कर करता है वह स्वयंसेवक है उसी की सेवा आदर्श और वही सच्चा सेवक श्रद्धेय है। उसकी प्रशंसा में जितना जो कुछ कहा जाये, उसके सम्मान हेतु जो कुछ किया जाये, वह सब थोड़ा ही है। ये परिभाषा स्त्रियों के लिये भी मैं मानती हूँ।

स्त्रियों को गुलाम इसी कारण कहा जा सकता है कि बहुत ही कम ऐसी स्त्रियां भारतवर्ष में होंगी जो पुरुषों की सहायता के बिना ही अपनी रक्षा तथा जीविका उपार्जन कर सकें। जो कि अपने पैरों आप खड़ी न हो सकें, जो दूसरों से अपने जीवन-निर्वाह तथा अपनी रक्षा के हेतु सहायता मांगने को विवश हैं, इसी कारण जिनको भर्त्सना, लांछना और भांति भांति के कटु व्यवहार आदि मन मार कर सहन करने ही पड़ते हैं, उनको दासी कहना ही पड़ता है। ऐसी नारियों को दुर्भाग्यवश यदि अपना सर्वश्रेष्ठ आश्रय पति को खोना पड़ा तो उनका जीवन बहुत ही असह्य और दयनीय होजाता है। कभी २ आत्महत्या तक बेचारी कर लेती हैं।

दूसरी श्रेणी में वे है जिन्हें दुर्भाग्यवश धनवान पति नहीं मिलता है, जो उनकी फर्माइश को मुँह से निकलते ही पूरा कर सके तो वे अपना जीवन नीरस मानती हैं और अपने भाग्य को धिक्कारा करती हैं, दूसरों की श्रृङ्गार सामिग्री देख २ कर कुढ़ा करती हैं, पति को उल्टा सीधा कहा करती है। रोती हैं, सुकमार शिशुओं को मारती-पीटती झटकती-पटकती हैं। कहती हैं—हाय मेरे भाग्य में यही घर बदा था, एक दिन के लिए भी चैन नहीं, अमुक स्त्री के पास कितना गहना-कपड़ा है, वही भाग्यवान् है। मुंह से निकालने भर की देर रहती है, बस फौरन वही चीज हाजिर। एक मैं हूं दिन रात काम में ही लगी रहती हूं, पर कभी भी दो-चार बार कहने पर भी एक चीज मुश्किल से मिलती है। बस ऐसी ही स्त्रियों को 'नौकरानी' कहने के लिए विवश हूं।

जो महिलाऐं अपना कर्तव्य मानकर पति-सेवा करती हैं, प्रतिदान की कामना नहीं रखतीं, फिर भी पति स्वेच्छा पूर्वक जो कुछ भी देता है, [illegible]

वर्ण धर्म की महानता ।

मनुष्य संसार का सर्व श्रेष्ठ प्राणी है, इसलिए उसका उत्तर दायित्व भी अन्य प्राणियों की अपेक्षा महान् है। अन्य प्राणी आहार निद्रा, आत्म रक्षा और सन्तानोत्पादन, इन चार कामों में अपने जीवन को व्यतीत कर देते हैं इसके अतिरिक्त न कोई उनकी इच्छा होती है और न अभिरुचि। पर मनुष्य की स्थिति इससे सर्वथा भिन्न है। वह उपरोक्त चार बातों तक अपने जीवन को सीमित रख कर सन्तुष्ट नहीं रह सकता। उसकी आत्मा सदा यह पुकारती है कि मानव शरीर परमात्मा का बहुत बड़ा उपहार है और यह उपहार खाने सोने और मरजाने के लिए नहीं मिला है। इसका उपयोग किसी महान् - महत्व पूर्ण - कार्य के लिए होना चाहिए। आत्मा की यह पुकार मनुष्य को बेचैन किये रहती है और उसे इस बात के लिए प्रेरित करती है कि जीवन धन को किसी महान् कार्य में खर्च करें। जब तक आत्मा की इस पुकार के अनुसार कार्य नहीं करता मनुष्य को आत्म शान्ति उपलब्ध नहीं होती।

आमतौर से महत्व पूर्ण एवं महान कार्य वे कहे जाते हैं जो असाधारण हों जिनके करने से चारों ओर यश फैल जाय, जैसे काम करना सर्व-साधारण के बस की बात न हो। पर यह विचार ठीक नहीं। ऐसे कार्यों को आश्चर्य जनक अद्भुत, असाधारण कहा जा सकता है पर महान् कार्यों के लिए यह आवश्यक नहीं कि वे अद्भुत अचम्भे में डालने वाले या असाधारण ही हो। ऐसे अवसर हर आदमी को इच्छा होने पर भी मिल नहीं सकते यदि सब लोग आश्चर्य जनक, यश, फैलाने वाले कार्यों के इच्छुक हो जावें और वैसे ही काम करने लगें तो एक तो "अतिवाद" बढने से अशान्ति फैलेगी दूसरे जब सभी लोग वैसे काम करने लगेंगे तो उनमें कुछ आश्चर्य भी न रहेगा।

महान कार्य वे हैं जिनमें परमार्थ, लोक कल्याण, जन सेवा, प्रधान है। इस प्रकार के कार्यों में ही जीवन का उपयोग होना चाहिए। दूसरों के कष्टों को, दुखों को दूर करने के प्रयत्न में हमें सच्ची शान्ति के दर्शन होते हैं। इस प्रकार के आन्तरिक शान्ति प्रदान करने वाले कार्यों में जीवन का सद्व्यय हो तो समझना चाहिए कि जन्म सफल हुआ।

ससार में चार प्रकार के दुख हैं १—अज्ञान जन्य २—नीति जन्य ३—अभाव जन्य ४—अशक्ति जन्य। इन चारों में से कम करने की जितनी क्षमता रखता हो, वह उसके लिए प्रयत्न करें। यह प्रयत्न ही महान कार्य है, यही जीवन का सद्व्यय है। हिन्दू धर्म शास्त्रों ने हर व्यक्ति को आदेश किया है कि वह अपनी रुचि और योग्यता के अनुसार इन चारों में से एक दुख को संसार में से कम करने का अपना लक्ष चुनले। क्यों कि एक सिपाही चार मोर्चों पर एक साथ नहीं लड सकता। एक मोर्चे पर जम कर ही वह अपनी कुशलता दिखा सकता है इसलिए चारों से एक साथ जूझने की अपेक्षा किसी एक को अपना लक्ष चुन लेने का आदेश किया है।

यह चार लक्ष, चार वर्णों के नाम से प्रसिद्ध हैं अज्ञान जन्य दुखों से संसार बचाने का प्रयत्न करने वाला ब्राह्मण, अनीति जन्य कष्टों मिटाने के लिए संघर्ष करने वाला क्षत्रिय, अभाव के दुख को दूर करने वाला वैश्य, और अशक्ति की असुविधा को हटाने वाला शूद्र कहलाता है। चारों का काम एक समान महत्व का है। चार मोर्चों पर लड़ने वाले सिपाहियों के कार्य क्रम भिन्न भिन्न होते हैं, योजनाएं अलग अलग होती हैं, हथियार भी आव-

---

ही देती है और न पति की निन्दा ही करती है सेवा में ही जिनको आनन्द मिलता हैं वे ही पतिव्रता हैं। वे ही गृह को शोभा युक्त बनाने वाली पृथ्वी पर ही स्वर्ग बनाने वाली गृह लक्ष्मी हैं।

श्यकतानुसार भिन्न प्रकार के प्रयोग किये जाते हैं। इस प्रकार की भिन्नताएँ होते हुए भी वस्तुतः सभी सिपाही एक समान स्थिति रखते हैं। फौज का कप्तान कार्य की प्रथकता के कारण उनकी स्थिति में कोई अन्तर नहीं करता। चारों वर्णों का विभाजन कार्य की सुविधा के लिए है। ऊँच नीच का भेद उत्पन्न करना वर्ण व्यवस्था का मन्तव्य नहीं है।

ब्राह्मण अपना जीवन-लक्ष नियत करता है कि मैं अज्ञान के अन्धकार को लोगों के हृदयों में से हटाने में अपना जीवन उत्सर्ग करूँगा। संसार में सब से अधिक कष्ट अज्ञान के कारण होता है। शोक, चिन्ता, वियोग, हानि, भय, ईर्षा, द्वेष, दाह, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर सरीखे मानसिक विकारों के कारण कलह, क्लेश, बेचैनी, पीडा की उत्पत्ति होती है। इन विकारों से ग्रसित व्यक्ति का निजी और सामूहिक जीवन सदैव संत्रस्त बना रहता है। इसी प्रकार दृष्टिकोण का दूषण, भ्रम, अन्धविश्वास, अशिक्षा, अविद्या, आदि के कारण पग २ पर ठोकर खानी पडती है। यदि इन अज्ञानों का निवारण होजाय और अन्तस्तल में निर्मल ज्ञान का प्रकाश हो, तो साधारण परिस्थितियों में रहने वाला भी स्वर्गीय सुख लूटता हुआ जीवन बिता सकता है। इसके विपरीत असीम सम्पदा होते हुए भी अज्ञानी को चैन नहीं मिलता। ब्राह्मण इस विषम स्थिति को दूर करने के लिए आत्मोत्सर्ग करता है। अपना परम पुनीत धर्म कर्तव्य समझ कर अहिर्निशि अपने तथा दूसरों के अज्ञान का निवारण करने के लिए प्रयत्न करता रहता है।

क्षत्रिय अपने जीवन को अनीति के कारण उत्पन्न होने वाले कष्टों से संसार को बचाने के लिए प्रतिज्ञा करता है। चोर, ठग, डकू, लुटेरे, आततायी, जुआरी, व्यासनी व्यभिचारी, शोषक हिंसक अन्यायी, अत्याचारी प्रकृति के लोग अपने स्वार्थ साधन के लिए दूसरों के स्वत्वों का अपहरण करते निर्दोषों को कष्ट सहना पडता है। क्षत्रिय इस अवांछनीय स्थिति का सामना करता है। न्याय की रक्षा के लिए वह हर संभव उपाय काम में लाता है और इस कार्य में यदि प्राण भी जाता हो तो सोचता है- "हतोवा प्राप्यसि स्वर्ग।" आत्म दान की यह भावना क्षत्रिय अपनी आत्म पुकार के अनुसार अपनाता है और प्राण रहते उस पर दृढ रहता है।

वैश्य जनता के अभाव जन्य दुखों को मिटाने का प्रण करता है। बीमार आदमी औषधियाँ ढूँढने जङ्गलों में, पर्वतों में, कैसे जाय? इस असुविधा को पंसारी की दुकान खोल कर वह दूर करता है। चन्द पैसों में दुर्लभ जडी बूटियां रोगी को मिल जाती है। यदि पसारी की दुकान न होती तो या तो रोगी को प्राणों से हाथ धोना पडता या सैकडों हजारों रुपये खर्च करके अपने आदमी भेज कर दूर देशों से वे औषधियां मँगानी पडतीं इतने पर भी न जाने कितने दिन लग जाते। इस प्रकार की असुविधएँ जीवन के हर क्षेत्र में होती हैं। अन्न, दूध, दही, मिठाई, मेवा, फल, कपडा, वर्तन, पुस्तक, कागज, घी, तेल नमक आदि दैनिक आवश्यकता की अत्यन्त उपयोगी वस्तुएँ थोड़े पैसे देते ही तुरंत मिल जाती हैं यदि वैश्य न हो तो इन चीजों को जुटाने में समय और शक्ति का इतना खर्च हो कि इस कार्य के अतिरिक्त और कुछ कार्य करना लोगों के लिए कठिन हो जाय। उस कठिनाई में कितना कष्ट उठाना पड़ेगा इसकी कल्पना से दिल कांप जाता है। ऐसी दशा में संसार की समस्त सभ्यता नष्ट हो जायगी और जङ्गली पशुओं की तरह रहने के लिए मनुष्य जाति को विवश होना पड़ेगा। वैश्य इस कठिनाई से संसार को उबारता है।

शूद्र शारीरिक श्रम की आवश्यकता को पूरा करता है। शिल्प का समस्त कार्य शारीरिक श्रम की आवश्यकता रखता है। मकान, जेवर, फर्नीचर औजार, वर्तन, जूते, कपड़े आदि का निर्माण करने

जनता को वंचित रहना चाहिए। और कर्म, वस्त्र धोना, झाड़ू लगाना, बोझा ढोना तथा अन्य अनेकानेक घरेलू, सामाजिक तथा कारखानों का काम पूरा करने वाले कारीगर अपनी शारीरिक श्रम शक्ति से कितना उपकार करते हैं। यदि वे अपने उपकारों से हाथ खींचलें तो मनुष्य जाति को भारी सङ्कट का सामना करना पड़े। इस सङ्कट से जन समाज को शूद्र उबारता है। वह दूसरों की सुख शान्ति केलिए अविरल परिश्रम करतारहता है।

उपरोक्त चारों ही काम यज्ञ रूप है। जिस भावना से वर्ण व्यवस्था का निर्माण हुआ है उन्हीं भावनाओं को हर वर्ण अपनाये रहे तो वह नियत कार्य क्रम ही आत्मा की पुकार को तृप्त करने वाला महान्—महत्व पूर्ण कार्य बन जाता है और उस कार्य द्वारा अपना निर्वाह तथा दूसरों की सेवा करता हुआ मनुष्य जीवनोद्देश्य को प्राप्त कर सकता है। परमपद तक पहुंच सकता है सम्भावना युक्त जनता जनार्दन की सेवा का यह वर्ण धर्म महान् योग साधनाओं से किसी प्रकार कमनहीं है।

आज वर्ण धर्म बिगड़ कर वर्ण शङ्कर होगया है। 'सेवा का दृष्टिकोण प्रधान और निर्वाह की जरूरत गौण' इस धर्म कर्तव्य को छोड कर हर वर्ण के लोग अपने स्वार्थ को प्रधानता दे रहे हैं और परमार्थ को या तो बिलकुल छोड रहे हैं या बहुत ही कम कर रहे हैं। यही वर्ण शङ्कर है। हम देखते हैं कि आज ब्राह्मण दक्षिणा एवं निमन्त्रण के लोभ में अज्ञान फैलाने ठगने और दीनता पूर्वक याचना में लगे है। क्षत्रिय मद्य, मांस व्यभिचार अहङ्कार और अत्याचार में डूबे रहे हैं। वैश्य नकली, मिलावटी, खराब, हानिकारक चीजें, अनुचित मुनाफे के साथ भेड़ कर ग्राहकों की जेब काट रहे हैं। शूद्र खराब, अधूरा, कम श्रम करके अपनी प्रतिष्ठा को बट्टा लगा रहे हैं। इस प्रकार वर्ण धर्म सन्निहित परम पुनीत परमार्थ का स्थान घोर स्वार्थपरता ने ग्रहण कर

विच्छू दंश का अनुभूत उपचार

विच्छू के काटने से कैसी छटापटा देने वाली, पीडा होती है इसे भुक्त भोगी ही जानते हैं। जिन प्रदेशों में बिच्छू अधिक होते हैं वहां के निवासियों को इस दुष्ट जीव से बडा त्रास रहता है। कई छोटे बालक तो डङ्क की दुसह पीडा से छटपटा कर प्राण त्याग करदेते हैं कभीरकोई विषैलाबिच्छू बड़े आदमी के लिए भी प्राण-घातक बन जाता है।

यों तो बिच्छू के विष के लिए अनेकों दवाएं प्रचलित हैं और इनमें से एकाध दवा हर व्यक्ति को मालूम होती है। पर ऐसी शर्तिया दवा जो जादू की तरह काम करती हो किसी विरले को ही मालूम होती है। मुझे एक ऐसा ही परीक्षित उपाय प्राप्त हुआ है। एक सपेरे ने एक बार हमारे यहां एक बिच्छू के डङ्क की भयङ्कर पीडा में छटपटाते हुए बालक पर इस चीज का प्रयोग किया था। उससे तुरन्त लाभ हुआ। मैंने उस सपेरे से काफी विनय करके, लोक हित का धर्म बता कर तथा धन देकर इस नुसखे को मालूम किया। तत्पश्चात् पचासों बार आजमाया सदा ही उससे आश्चर्य जनक लाभ हुआ। अब इन पंक्तियों द्वारा उस नुसखा को अखण्ड-ज्योति के पाठकों के सामने उपस्थित कर रहा हूँ।

बिजली के टॉर्चो की बैटरी को तोडने से उसके अन्दर वाली गोल लम्बी बत्ती सी निकलती है। उस बत्ती को नमक के साथ घिस कर बिच्छू के काटे हुए स्थान पर गाढा लेप करें आग से सेंक दीजिए लेप सूखते ही पूर्ण आराम होगा।

—:—

सच्चे वर्ण धर्म की स्थापना से ही समाज में चतुर्मुखी शान्ति रह सकती है। सद् प्रवृत्ति के साथ किया हुआ नियत कर्म पेशा—ही मोक्ष दायक बन सकता है। आइए, सच्चे वर्ण धर्म की पुनः स्थापना के लिऐ हम और आप मिल कर कुछ

मन की गांठें खोल दीजिए।

मनोविकारों में "दुराव" अपने ढङ्ग का अनोखा है। इसकी भयङ्करता बड़ी विकट है। काम, क्रोध, लोभ, शोक, चिन्ता, भय आदि विकार तो तूफान, बाढ़ बवंडर की तरह आते हैं और कुछ देर बाद शान्त होने पर उनका कोई चिन्ह बाकी नहीं रहता उनका दौरा कभी कभी होता है सो भी थोड़े समय के लिए, उतने ही समय में उनसे जो कुछ हानि होनी होती है वह हो जाती है। पर 'दुराव' एक ऐसा विकार है जो हर घड़ी, रात दिन, सोते जागते साथ रहता है। और हर घड़ी हानि पहुँचाता रहता है।

डाक्टर फ्रायड, ब्रेवोन, गाइली, प्रभृति मनोविज्ञान शास्त्रके आचार्य अपनी चिरकालीन शोधों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि अधिकांश मानसिक रोग दुराव की महाव्याधि के कारण होते हैं। मनुष्य कोई इच्छा या अभिलाषा करता है, भविष्य की कोई सुन्दर कल्पना करता है, पर संकोच के कारण उसे मन में ही रखता है किसी पर प्रकट नहीं करता, उसे भय होता है कि जिस पर अपनी कल्पना प्रकट करूँगा वे मेरा मजाक बनावेंगे, तिरस्कार करेंगे; दूसरों के सामने चर्चा करके मूर्ख ठहरावेंगे। इसी प्रकार मन में कभी कभी जो आशङ्काऐं चिन्तायें, वेदनाऐं वेदनाऐं उठा करती हैं उन्हें भी मनुष्य दूसरों से नहीं कहता, वह सोचता है अपने मनोभाव जिस पर प्रकट करूँगा वह मुझे डरपोक, कायर, कमजोर, दुखी समझेगा। इसमें मेरी हेटी होगी। यह सोच कर वह इन भावनाओं को मन में छिपाये रहता है किसी पर प्रकट नहीं करता। काम वासना का विषय अश्लील और गोपनीय समझा जाता है, सामाजिक और धार्मिक प्रतिबन्ध भी इस दिशा में बहुत हैं। किसी अवैध दिशा में यदि मन चलता है तो उसे छिपाये रहने में ही भलाई समझी जाती है। किसी पर उन भावों के प्रकट करते ही प्रतिष्ठा नष्ट होती है। इसलिए उन इच्छाओं को मन में दबा कर रखना ही ठीक मालूम होता है। यदि किसी ने कोई पाप किया है, चोरी, लूट, हत्या, डकैती विश्वासघात, ठगी, व्यभिचार सरीखा कोई दुष्ट कर्म किया है, तब तो उसका प्रकट करना भारी जोखिम का काम है। जिससे कहा जाय वह अपने को सन्देह की दृष्टि से देखेगा अविश्वास करेगा, और यदि भेद खुल गया तो राजदन्ड का, भागी होना पड़ेगा तथा जिसे हानि पहुँचाई थी उसकी प्रत्यक्ष शत्रुता का, प्रतिहिंसा का मुकाबिला करना पड़ेगा इतने खतरे उठाने की अपेक्षा यही ठीक समझा जाता है कि उन बातों को किसी पर भी प्रकट न किया जाय; मन में ही छिपा कर रखा जाय। ईर्षा द्वेष, शत्रता, प्रतिहिंसा के भावों को भी मनुष्य मन में छिपाये रहता है, किसी को ठगना हो, नीचा दिखाना हो, आक्रमण करना हो तो उन भावी योजनाओं को छिपाकर रखाजाता है। "मन में कुछ मुख में कुछ" की कहावत को चरितार्थ करते हुए कितने ही व्यक्ति देखे जाते हैं। वे वास्तव में जैसे हैं, वास्तव में जैसे विचार रखते हैं उससे भिन्न अपना रूप दूसरों के सामने प्रकट करना चाहते हैं इसलिए अपनी वास्तविकता के प्रतिकूल बातें कहते और वेष बनाते हैं।

इस प्रकार के दुराव के कारण उनके अंतःकरण में दो व्यक्तित्व निवास करने लगते हैं। अर्थात् एक मनुष्य के अन्दर दो मनुष्य घुस जाते हैं। एक वह जो वास्तविक, दोष, युक्त, पापी, अपराधी या मूर्ख ठहराये जाने के भय से भीतर छिपा बैठा है। दूसरा वह जो मायाचार से अपनी बाह्य प्रतिष्ठा बनाये बैठा है। दोनों एक दूसरे से प्रतिकूल होते हैं। फिर भी एक ही घर में रहते हैं। जैसे एक म्यान में दो तलवारें ठीक तरह नहीं ठुसती उसी प्रकार यह दो व्यक्तित्व भी आपस में सहयोग पूर्वक नहीं रह पाते। भीतर ही भीतर दोनों में संघर्ष होता रहता है। जिससे आत्मा में एक अशान्ति बनी रहती है बेचैनी उठती रहती है।

मनुष्य को ठीक ठीक पता नहीं चलता कि इस बेचैनी का कारण क्या है, तो भी वह यह देखता है कि उसे चैन नहीं, भीतरी संघर्ष कभी कभी तो इतने प्रबल होजाते हैं कि रात को अच्छी तरह नींद भी नहीं आ पाती।

स्वप्नों की दुनियां का निर्माण इन दो व्यक्तित्वों के द्वन्द के कारण होता है, जिस व्यक्तित्व को जागृत अवस्था में दबा दबा कर रखा गया था, वह नींद आजाने पर उठता है और मस्तिष्क में कुलाचें भरता है। मस्तिष्क के भीतरी मंत्रों के ऊपर वह चूहे की तरह उछलता कूदता फिरता है उन्हें काटता कुतरता है फलस्वरूप विविधि प्रकार आघात लगने से विचित्र विचित्र अनियंत्रित तरङ्गें मनःलोक में उठती हैं, यही तरङ्गें बेसिर पैर के विविधि स्वप्नों के रूप में सामने आती हैं। अधिक स्वप्न उन्हें ही आते हैं जिनके अन्दर दो व्यक्तित्व निवास करते हैं।

कहते हैं कि जिसकी देह में भूत पिशाच घुस जाता है उसे एक प्रकार का आवेश चढ आता है। सांप का विष या पागल कुत्ते का विष शरीर में घुस जाय तो भी कुछ विचित्र दशा हो जाती है, दो व्यक्तित्वों का एक देह में रहना मनुष्य की शारीरिक और मानसिक स्वस्थता को भीतर ही भीतर चौपट करता रहता है।

मनोविज्ञान शास्त्र भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचा है। उसका कथन है कि दुराव के कारण ही अधिकांश शारीरिक तथा मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं। नासूर, भगन्दर, दमा, बवासीर, संग्रहणी सरीखे चिरस्थायी रोग गोपनीय मनोवृत्ति के कारण होते हैं। खुजली का प्रधान कारण दुराव है उसी के कारण रक्त में चिड़चिड़ाने वाले क्षार बढते हैं। स्त्रियों को हिस्टेरिया के, मृगी के दौरे संतान सम्बन्धी अतृप्त इच्छा के कारण आते हैं। प्रायः सभी किस्म के पागलपनों का प्रधान हेतु 'दुराव' है। कब्ज, मूत्राशय की शिथिलता और यकृत की शुष्कता भी इसी कारण होती है। ... ... के रोगों को ... ... है

और थकानेंबनी रहती है। दबी हुई, कुचली, हुई अतृप्त कामेच्छा तथा अन्य भावनाएं एक प्रकार की ग्रन्थियों के रूप में परिणित होकर अन्तर्मन में धँस जाती है। जैसे मांस के भीतर एक लोहे की पिन धँस जाय तो वह जब तक निकल नहीं जाती, घाव बना रहता है और दर्द होता रहता है वैसे ही दुराव की ग्रन्थियां मनःक्षेत्र में धंसी रहती हैं। और वहां से विष भरी फुसकारें छोड छोड कर शरीर तथा मन को विषैला, रोगी, जीर्ण शीर्ण करती रहती हैं।

यह ग्रन्थियां जिस कारण को लेकर उत्पन्न होती हैं इससे मिलते जुलते रोगों की सृष्टि करती हैं धनवान मनुष्य अपने धन की तादाद, उसके रखने का स्थान आदि छिपाये रहते हैं, इस निरन्तर दुराव की ग्रन्थियां वीर्य कोण को निःशक्त कर देती हैं। फल स्वरूप उन्हें संतान नहीं होती। जहां फूंस के झोंपड़ों में सोने वाले मजूर दर्जनों बच्चे जनते जाते हैं वह अमीर लोग संतान के लिए तरसते हैं। ऐसे असंख्यों शारीरिक और मानसिक रोग हैं जिनका निदान, और निवारण करने में बड़े से बड़े डाक्टर हतबुद्धि हो जाते हैं। शरीर के सब कल पुर्जे ठीक काम कर रहे हैं पर रोगी के प्राणों पर बीतती है। डाक्टर लोग हैरत में रह जाते हैं कि यह सब क्या है? उसका उपचार क्या है करें? ऐसे लोगों को कई बार भूतव्याधा; कम रोग कह कर छोड दिया जाता है।

मनःशास्त्र के तत्वज्ञों ने एक नई चिकित्सा विधि निकाली है। वे रोगी को एकान्त में ले जाते हैं और उससे भूतकाल की स्मृतियों को सविस्तार कहने का अनुरोध करते हैं। जो भूलें या गलतियां उससे हुई हैं, जो इच्छाएं, अभिलाषाएं, कल्पनाएं, आयोजनाएं उसने कभी बनाई हैं जो अपमान, तिरष्कार, असफलता, निराशा, विछोह विश्वासघात आदि के आघात लगे हों तथा भविष्य के लिए वह जो जो बातें सोचा करता हो उन सब बातों को बिना राई रत्ती छिपाये कहदे, इस बात पर ... ... रोगी से विशेष आग्रह करते हैं

उसकी निरर्थक बातों को भी बड़े ध्यान से सुनते हैं और रोगी जो कुछ कहने में भूल रहा हो उसे प्रश्न पूछ पूछ कर उखडवाते हैं। डाक्टर उस रोगी को पूरा विश्वास दिला देते हैं कि उसकी एक भी गुप्त बात किसी दूसरे पर प्रकट न करेंगे। रोगी से लगातार कई कई घन्टे, कई दिन तक उसका पूर्व वृत्तान्त पूछा जाता है और उसकी मनोभूमि को जोत जोत कर वे सब बातें उगलवा ली जाती हैं जो वहुत समय से छिपी पडी थीं। रोगी को स्वयं भी यही पता नहीं होता कि कब किस बात के कारण कौन ग्रन्थि उसके मन में बन गई थी, और उसके कारण क्या २ अनिष्ट हुए। डाक्टर भी इसका ठीक ठीक विश्लेषण कम ही कर पाते हैं। इतना होते हुए भी उस—"गोप्य प्रकाशन-वार्तालाप" द्वारा वे ग्रन्थियां खुल जाती हैं। रोगी का मन हलका हो जाता है। साथ ही वे मानसिक द्वन्द भी मिट जाते हैं जिनके कारण रोगी बाहर से ठीक दीखते हुए भी भीतर ही भीतर खोखला हुआ जारहा था और चुपके चुपके मृत्यु के मुख की ओर बडी तेजी से सरक रहा था इस चिकित्सा विधि का पाश्चात्य देशों में आश्चर्य जनक परिणाम निकल रहा है। सहस्त्रों कष्टसाध्य और असाध्य—शारीरिक एवं मानसिक रोगियों की व्यथाओं का सफलता पूर्वक निर्मूल किया जा रहा है।

यह नवीन शोधें भारतीय योगियों के अकाट्य आध्यात्मिक विषयों का समर्थन करती हैं। योग शास्त्र मन की निष्कपटता पर अत्यधिक जोर देता है और उसे आत्मोन्नति का प्रथम साधन बताता है। महात्मा ईसा मसीह कहा करते थे—"जिन का हृदय बालकों की तरह पवित्र है वे ही ईश्वरीय राज्य में प्रवेश करेंगे।" दुराव से जितना ही बचा जायगा उतना ही मनःक्षेत्र शुद्ध रहेगा। पाप के संस्कार भी दुराव के कारण ही बनते हैं। जो चोरी सबके सामने प्रकट रूप से की जाय वह चोरी नहीं होती। अपनी स्त्री के हाथ काम सम्बन्ध होना नहीं गिना जाता। इशियल जाति में यह मान्यता है कि पुरुष अपनी स्त्री की सहमति किसी दूसरी स्त्री से व्यभिचार करे तो पाप नहीं, इसी प्रकार स्त्री अपने पति की सहमति किसी दूसरे पुरुष से समागम करे तो उसमें दोष नहीं। इस मत की पुष्टि में इशियल धर्म शास्त्र की दलील यह है कि जहां दुराव नहीं वहां पाप नहीं। भारतीय धर्म शास्त्रों में सत्य को सब पापों का नाश करने वाला कहा है।

आन्तरिक स्वस्थता के लिए, आत्मिक स्वच्छता के लिए, यह आवश्यकता है कि हम दुराव से बच कर निष्कपटता की नीति को अपनावें। स्वच्छ हृदय में परमात्मा का साक्षात निवास होता है। इस महा साधना का आरम्भ किन्हीं पूर्ण विश्वासी, परखे हुए, उच्च चरित्र वाले, उदारमना मित्रों से आरम्भ किया जा सकता है। कुछ ऐसे सच्चे मित्र चुनने चाहिए जिनके सामने अपने पेट की बातें उसी रूप में कही जा सकें जिस रूप में कि अपने मन में आती हैं। इस प्रकार "गोप्य प्रकाशन वार्तालाप" द्वारा मन हलका होता रहता है, दुराव—ग्रन्थियों की गांठ खुलती रहती हैं और मनोविज्ञान के डाक्टरों को भारी फीस देने पर जो लाभ मिलते हैं वह अपने आप मिलने लगते हैं। यहां एक बात ध्यान रखने की आवश्यकता है कि यह सच्चे मित्र उदार अवश्य हों कि थोडा विरोध होने पर उन बातों को अनधिकारियों में फैलाकर कोई संकट उपस्थित न करा दें।

कहते हैं कि "पाप को प्रकट कर देने पर उसका भार उतर जाता है।" जैसे गौ हत्या करने का प्रायश्चित्य यह बताया गया है कि अपने पाप की घोषणा करता हुआ मनुष्य एक सौ ग्रामों में फिरे और फिर गङ्गा स्नान करे। मन की भेद ग्रन्थि खोल देने से एक प्रकार का मानसिक जुलाब हो जाता है, जिससे मनःक्षेत्र में जमे हुए पुराने विष धुल जाते हैं।

इस मार्ग पर धीरे धीरे आत्मविकाश के

वाले लोग यदि एक दम अपना नग्न स्वरूप सर्व-साधारण पर प्रकट करते हैं तो उन्हें अपनी सामाजिक स्थिति बिगड जाने का भय रहता है। इस लिए आरम्भ थोड़े से करना चाहिए। दृढ चरित्र वाले विश्वासी मित्रों पर, अपने सभी भले बुरे मनोभाव प्रकट करने आरम्भ करने चाहिए। उन मित्र का कर्तव्य है कि मित्र की कमजोरी समझ कर सहन करें। दुर्भाव मन में न लावें, और मृदुल, सहानुभूति सूचक भावनाओं के साथ मित्र की भूलों को सुधारने का प्रयत्न करते हुए उसे आगे बढने के लिए प्रोत्साहित करे। यह व्यवस्था बन जाने पर हर व्यक्ति अपनी आध्यात्मिक शान्ति एवं उन्नति का पथ प्रशस्त कर सकता है।

हमें हर्ष है कि 'अखण्ड-ज्योति" परिवार के कितने ही सदस्यों ने "अखण्ड-ज्योति" सम्पादक को ऐसा मित्र नियुक्त किया हुआ है। इस नियुक्ति से उन्हें थोड़े ही दिनों में जो लाभ हुए हैं, उसका वर्णन करना न तो उचित ही है न आवश्यक ही। पर उस से "गोप्य प्रकाशन" के महान् लाभों का आश्चर्य जनक प्रमाण अवश्य प्राप्त होता है और यह विश्वास हो जाता है कि इस छोटी सरल एवं सीधी साधना द्वारा जो लाभ होते हैं उन्हें अपने ढङ्ग का अद्भुत ही कहा जा सकता है।

— ❀ —

सात्विक सहायताएं।

२।।) श्री उमेदसिंह विष्ठ, लखनऊ
२) श्री रमेशचन्द्र दुबे, हटा
१) श्री राधिकाप्रसाद अवस्थी गोंडा
१) श्री श्रीकृष्ण शुक्ल, देहली
१) श्री देवकीनन्दनजी, जल्लो
१) श्री छदामीलाल मिश्र, फैजनगर

सच्चे ईश्वरीय विश्वासी मनुष्य की पहचान यह है कि वह शारीरिक और मानसिक कुकर्मों से [illegible]

आरोग्य खरीदा नहीं जाता।

(डा० एस० पी० सिंह, कैथी)

औषधियों के व्यापार में अत्यधिक लाभ है। चार पैसे की चीज के चार रुपये वसूल किये जाते हैं। इस पोल में घुस कर शीघ्र धनी बनने के लिए औषधि विक्रेताओं ने विज्ञापन बाजी की ऐसी धूम मचादी है कि साधारण जनता को भ्रम में पडने के लिए विवश होना पडा है। अखबारों में, दीवारों पर, पर्चों तथा पोस्टरों से, सूचीपत्रों से, तथा अन्य अनेकानेक मार्गों से दवाओं की महत्ता प्रदर्शित की जाती है। इतने बड़े प्रोपेगण्डे से प्रभावित होकर जनता यह विश्वास कर लेती है कि स्वास्थ्य को पैसों से खरीदा जा सकता है। वैद्य, डाक्टरों की दूकानें तथा औषधि निर्माताओं के बड़े बड़े कारखाने अपनी चमक दमक से जनता का मन मोह लेते हैं। और जन साधारण को यह विश्वास हो जाता है आरोग्य रङ्ग बिरङ्गे लेबिलों की बोतल में बन्द होकर औषधि विक्रेताओं की अलमारियों में रखा है पैसा फेंक कर जब चाहे तब, चाहे जितनी मात्रा में, खरीद लिया जा सकता है।

परन्तु यह धारणा नितान्त भ्रम मूलक है। आरोग्य की रक्षा और वृद्धि—औषधियों से नहीं, उचित आहार विहार से होती है। किसी विशेष आपत्ति के समय कोई रोग उठ खडा होने की दशा में तत्कालिक उपचार के रूप में औषधि काम में ली जा सकती है। पर यह निश्चित है कि दवाएं किसी मनुष्य को बलवान, निरोग तथा दीर्घ जीवी नहीं बना सकतीं। अमीर लोग जिनकी आज्ञा में दर्जनों डाक्टर हाथ बांधे खड़े रहते हैं—अक्सर बवासीर, कब्ज, मोटापा, नपुंसकता, अनिद्रा, थकान आदि से पीडित देखे जाते हैं। बहुमूल्य दवाएं तथा डाक्टरों की दौड़ धूप से उनका कुछ विशेष हित साधन नहीं [illegible]

उचित आहार; संयमित जीवन, ब्रह्मचर्य, व्यायाम, समय पर सोना जागना, उचित परिश्रम, मानसिक शान्ति, स्वच्छता का आश्रय लेकर मनुष्य बिना दवा के निरोग रह सकता है। उचित आहार विहार एक ऐसी गारन्टी है जिसके ऊपर बीमार न पड़नेका विश्वास रखा जासकता है।प्रकृति माता के आदेशानुसार जीवन बिताने वाले वन्य पशु पक्षी सदा निरोग रहते और आनन्द पूर्वक विचरण करते हैं। बीमारी तो प्रकृति विरुद्ध आचरणों का एक दंड है। इस दंड से बचने का उपाय तो अपराधों की पुनरावृत्ति न करना है।पैसे खर्च कर देने मात्र से कोई आदमी विद्वान नहीं बन सकता। धन देकर विद्या नहीं खरीदी जा सकती। इसे तो स्वयं प्रयत्न करके अध्ययन द्वारा प्राप्त किया जाता है इसी प्रकार स्वास्थ्य भी खरीदा नहीं जाता। धन से आरोग्य नहीं मिल सकता। प्रकृति माता के आदेशानुसार दिनचर्या बना कर, आहार विहार में सावधानी बरत कर ही हम स्वस्थ रह सकते हैं।

बीमारों को वैद्य डाक्टरों के दरवाजे पर डेरा डालने और उनकी जेबें गरम करने की अपेक्षा उपवास, फलाहार,, वस्ति, व्यायाम का आश्रय लेना चाहिए और जिन पंच तत्वों से शरीर बना है, उन जल तेज, वायु, पृथ्वी, आकाश द्वारा निरोग बनाने वाली प्राकृतिक चिकित्सा को अपनाना चाहिए।

शरीर के अन्दर जमे हुए विषों और विकारों को बाहर निकाल फेंकने के लिए शरीर की स्वस्थ सत्ता संघर्ष करती है, और भीतर भरे हुए विजातीय विषों को दस्त, थूक, पीव, पसीना, वमन, आदि द्वारा उन्हें बाहर निकालती है। रक्त के स्वास्थ्य रक्षक परमाणुओं और विजातीय विषों का संघर्ष दाह, या दर्द के रूप में प्रकट होता है। शरीर को बीमारी कहते हैं, इससे डरने की कुछ जरूरत नहीं है। यदि हम उपवास, विश्राम, धैर्य और प्राकृतिक उपचार प्रणाली का अवलम्बन करें तो बहुत शीघ्र स्वस्थरक्षा विकारों के विष को बाहर निकाल फेंकती है और शरीर अपने आप रोग मुक्त होजाता है। इसके विपरीत यदि दवाइयों की भरमार की जाती है तो रोग दब जाता है। आंतों में जमे हुए विषों को दस्तों द्वारा प्रकृति बाहर निकालती है ताकि पेट शुद्ध हो जाय। रोगी इसे एक आपत्ति समझ कर वैद्य के पास दौड़ता है। और वे औषधि देकर दस्त बन्द करा देते हैं। फल यह होता है कि वह विष पेट में ही जमा रह जाता है और मौका पाकर खून खराबी आदि के रूप में; फोड़े फुन्सी बनकर बाहर निकलता है। असल में बीमारी हमारी मित्र है पर हम भ्रम वश उन्हें शत्रु समझते है,। बीमारी हमारी शुद्धि करने आती है। नाली में जमी हुई कीचड़ को जब महतर खुरच कर साफ करता है तो बदबू उडती है। वह बदबू बुरी मालूम पड़ती है। पर नाली में गंदगी जमा रहने से सफाई की बदबू अच्छी। इसी प्रकार पेट और रक्त में विष दबे हुए भरे रहें ऐसी दशा अपेक्षा वह बीमारी की स्थिति अच्छी जो कुछ समय कष्ट देकर अन्त में शरीर को शुद्ध एवं निर्मल बना देती है।

अपनी दिन चर्या को प्राकृतिक नियमों के अनुकूल बनाइए। शाम को जल्दी सोइए प्रातःजल्दी उठिए। शारीरिक और मानसिक परिश्रम उतना कीजिए जो आपकी स्थिति के अनुरूप हो; सामर्थ्य से अधिक मेहनत करना या निठल्ले पड़े रहना दोनों ही स्थितियां हानिकर है। भूख लगने पर सात्विक आहार कीजिए। खूब चबा चबा कर खाइए। ब्रह्मचर्य से रहिए। व्यसनों से बचिए। मस्तिष्क को चिन्ता, उत्तेजना और आवेश से मुक्त रखिए। निर्भय रहिए जीवन को सात्विक बनाइए और प्रसन्न रहा कीजिए। आप स्वस्थ रहेंगे। बीमारी आवेगी तो बहुत जल्द चली जावेगी। स्वस्थता सर्वोपरि सम्पदा है उसे स्थिर रखिए और बढ़ाइए पर स्मरण रखिए—"आरोग्य खरीदा नहीं जाता" वह तो आहार विहार की सुव्यवस्था द्वारा प्राप्त होता है।

—:o:—

फिजूलखर्ची का गलत रास्ता

मनुष्य की पाशविक-वृत्तियों में अहङ्कार की प्रचण्डता बढ़ी चढ़ी है। अपने आपको, अपने अस्तित्व को, बढ़े-चढ़े रूप में देखने और दिखाने की उसकी इच्छा रहती है। यह इच्छा वीरतापूर्ण कष्टसाध्य कार्य करके महापुरुष बनने के लिए प्रेरित करती है। यह स्वाभाविक वृत्ति जब सतोगुण में होकर गुजरती है तो मनुष्य ऐसे कार्य करता है, जिनसे उसके आत्मगौरव का विकास हो। त्यागी, तपस्वी, देशभक्त नेता, लेखक, ग्रन्थकार शिल्पी, कलाकार आदि प्रतिष्ठित और उपयोगी कार्य करके महान् बनते हैं। इनका अहङ्कार सतोगुण मार्ग से प्रकट होता है, इसलिए वह उचित एवं लोक-कल्याणकारक होता है।

पर जब यह अहङ्कार तामसिक मार्ग से प्रकट होता है तो बड़े बुरे रूप में सामने आता है। मनुष्य की वास्तविक सम्पत्ति उसका मानसिक विकाश है। विद्या, ज्ञान, विज्ञान, सद्गुण, सदाचार, उत्तम स्वभाव, स्वच्छ दृष्टिकोण, सेवा, मृदु-भाषण, उदारता, परोपकार, उच्च चरित्र सरीखे गुणों से महानता प्राप्त होती है और अपनी नजर में तथा दूसरों की नजर में ऊँचा उठता है। लेकिन समय के कुप्रभाव से सत्पुरुषों की कमी हो गई है और रजोगुण बढ गया है। अब धन को प्रधानता दी जाने लगी है बहुमत की दृष्टि में धन का महत्व सब से अधिक है, इसलिए लोग धनी बनकर अपने अहङ्कारकी पूर्ति करने के लिये प्रयत्नशील हैं।

धन का अधिक मात्रा में उपार्जन और संग्रह केवल मात्र चाहने पर निर्भर नहीं है। देश-काल, परिस्थिति, एवं अवसर से इसका बड़ा सम्बन्ध है। आपका देश पिछले दिनों जिन परिस्थितियों में रहा है और आजकल जिन परिस्थितियों में होकर गुजर रहा है, उनमें चन्द मनुष्य ही धनी बन सकते हैं। शेष को गरीब या मध्यम वर्ग का रहने को वाध्य होना पड़ता है। अधिकांश भारतवासी गरीब ही हैं। पर गरीब, मध्यवर्ग और अमीर सब में अहङ्कार की मात्रा एक समान है। इस अहङ्कार की पुष्टि आज के सामाजिक दृष्टिकोण के अनुसार धनी बनने से होती है। किन्तु धनी बनना बड़ा दुःसाध्य है। ऐसी अवस्था में वह अहङ्कार एक नई दिशा में फूटता है। धनी न होते हुए भी धनी बनने का दम्भ करके, ढोंग बनाकर किसी प्रकार आत्म-सन्तोष करना चाहते हैं। दूसरों की आंखों में धूल झोंक कर अपने को धनी मनवाना चाहते हैं। आज जन समाज का अहङ्कार इसी तामसिक मार्ग से बेतरह फूट निकला है।

अपने को अमीर साबित करने के लिए गरीब आदमी भी अमीरों जैसा लिफाफा बनाता है। इस लिफाफे को बनाने और उसकी रक्षा करने के लिए एक इतनी भारी फिजूलखर्ची को सिर पर लेना पडता है कि जिसके बोझ से उसकी कमर और गर्दन झुक जाती है। हम देखते हैं कि लोग विवाह, शादी, त्यौहार, उत्सव, प्रीतिभोज आदि के अवसर पर दूसरे लोगों के सामने अपनी हैसियत प्रकट करने के लिए अन्धाधुन्ध खर्च करते हैं। भूखों मरने वाले लोग भी कर्ज लेकर अपना प्रदर्शन इस धूमधाम से करते हैं मानों कोई बड़े भारी अमीर हो। इस धूमधाम के करने में उन्हें अपनी नाक उठती हुई और न करने में कटती हुई दिखाई पडती है।

भारत एक गरीब देश है। हमारे देशवासियों की औसत आमदनी आजकल भी तीन-चार आना रोज से अधिक नहीं है। इतनी छोटी आमदनी में शिक्षा, स्वास्थ्य, भोजन वस्त्र, मकान तथा अन्य आवश्यक खर्चों की पूर्ति बड़ी मुश्किल से हो सकती है। पैसे की कमी के कारण उचित मात्रा में दूध, घी, फल नहीं खा सकते, स्वच्छ मकान और स्वच्छ वस्त्र प्राप्त नहीं कर सकते, बच्चों को अच्छी शिक्षा नहीं दिला सकते, बीमारी में ऊँची चिकित्सा नहीं करा सकते, यात्रा, अध्ययन, मनोरंजनों के अवसरों से वंचित रहते हैं, सुविधाजनक जीवन की—

अन्य आवश्यकताओं को जुटा नहीं पाते, फिर भी विवाह शादी के मृत भोजों के अवसर पर सैकड़ों हजारों रुपया फूंक देते हैं। इस उपक्रम के लिए उन्हें वर्षों पेट काट कर एक एक कौडी जोड़नी पडती है. कर्ज लेना पडता है, या और कोई अनीति मूलक पेशा अख्त्यार करके धन जोड़ने के लिए बाध्य होना पडता है।

आज असंख्यों व्यक्ति बेईमानी का पेशा करने में लगे हुए हैं। क्योंकि वे अपना जितना लिफाफा बनाना चाहते हैं उसका आडम्बर बनाने के लिए आवश्यक धन ईमानदारी से नहीं कमाया जा सकता। इस प्रकार यह अनीति का रोग देखा देखी एक से दूसरे को छूत की बीमारी की तरह लगता है। जल्दी से जल्दी धनवान बनजाने का एक मात्र तरीका व्यापारिक व्यभिचार है। आज उसका आम रिवाज हो रहा है और हमारे समाज का नैतिक धरातल गिरता जा रहा है।

कितने ही बड़े जमीदार जागीरदार जिनकी आमदनी संतोषजनक है। कर्जदार बन कर दिवालिये हो जाते हैं। वे अपनी रईसी के आडम्बर की रक्षा के लिए अन्धा धुन्ध फिजूल खर्ची करते हैं। अमीरी का विज्ञापन करने का आज एक ही तरीका प्रचलित है वह है—फिजूल खर्ची जिसका काम तांगे में बैठने से चल सकता है वह भी मोटर के बिना जमीन पर पैर नहीं धरता। जिसका काम एक मोटर से चल सकता है उसे दस चाहिए। कपड़े, जेवर; मकान नौकर, भोजन, मनोरञ्जन, कहां तक कहें हर दिशा में 'अधिक खर्च—अधिक अमीरी' का चिन्ह बना हुआ है। वास्तविक धनी इस देश में मुट्ठी भर हैं। अधिकांश लोग धनी होने का नकाब ओढे फिरते हैं। रामलीला के खेल में कागज के चहरे मुँह पर बांध कर जैसे खेल करने वाले अपने को देवता, राक्षस आदि बना लाते हैं आज वैसे ही फिजूल खर्ची का चहरा मुँह पर बांध कर लोग अमीर बने फिरते हैं। रामलीला के पात्र वास्तव में मनुष्य होते हैं देवता राक्षस नहीं हैं पर अहङ्कार की तामसिक प्रगति तो देखिए। झूठ मूंठ अमीर बने फिरते हैं। बेकार फिजूल खर्ची का पत्थर गले से बांधे फिरते हैं।

यह मानव प्राणी का बौद्धिक 'बाल क्रीडा' है। दम्भ का नकाब ओढ कर फिजूलखर्ची के आधार पर धनी बनना बालबुद्धि के अतिरिक्त और कुछ नहीं। अहङ्कार के प्राकट्य का यह निकृष्ट रूप है हमें चाहिये कि इस अज्ञान को उतार फेंके। फिजूलखर्ची से बचें। पैसे का वास्तविक उपयोग शारीरिक, मानसिक सामाजिक और आत्मिकस्वास्थ्य का बढाना है। हमें चाहिए कि अपने और अपने परिजनों की इस चतुर्मुखी स्वस्थता को बढाने के लिए अपनी ईमानदारी से कमाया हुआ पैसा लगावें और व्यर्थ के आडम्बरों को हटा कर सादगी का जीवन बनावें। "सादा जीवन उच्च विचार" यही मनुष्य की महानता का वास्तविक चिन्ह है।

अहङ्कार जीव की स्वाभाविक वृत्ति है। उसे चरतार्थ करने के लिए आज लोगों ने "फिजूलखर्ची द्वारा धनी बनने का ढोंग करने" के मार्ग को अपना लिया है। यह तामसिक मार्ग है। इससे मनुष्य जाति में अशान्ति तथा पाप की वृद्धि होती है। हम इसे छोड़ें और अपने को महान् बनाने के लिए सादगी, सभ्यता, सत्कार्य, सेवा तथा सस्कृति की वृद्धि करें। आत्मिक महानता में ही हमारी वास्तविक महानता है।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀

जो अपने बारे में तुच्छता के विचार रखता है वह सचमुच तुच्छ है और जिसका विश्वास है कि मैं महान् हूँ, सचमुच वही महान् है।

❀ ❀ ❀ ❀

परमात्मा जिस पर अत्यन्त प्रसन्न होता है उसे नदी सी दान शीलता; सूर्य सी उदारता और पृथ्वी की सी सहन शीलता प्रदान करता है।

अमृतकण।

(श्री पथिक जी)

१ – यदि आप ऊंची कक्षाओं की डिगरी पाये हुए शिक्षित विद्वान् हैं तो आपसे यह प्रश्न करना ही पडता है कि आप की विद्या किस लिये ? इसका उत्तर वही होगा जो आप व्योहार में बुद्धि द्वारा, नीति, धर्म बरत रहें होंगे।

२ – कुछ भी हो सन्तोष की बात यही होगी कि आप की विद्या केवल रोटी के लिए न होनी चाहिये। आप की विद्या छल, कपट चालाकी से धनोपार्जन के लिये न होनी चाहिये बल्कि आपकी विद्या हर एक दिशा में, प्रत्येक स्थल में, परहित के लिये दूसरे की सेवा के लिए होनी चाहिये।

३—आप की बुद्धिमत्ता तभी सराहनीय है कि हर एक क्षेत्र में, परिवार में, जाति में समाज में, सभी आप से सुखी सन्तुष्ट रहें। आपकी विद्या दूसरों को धोखा देने के लिये, अपना काम चालाकी से बना लेने के लिये, झूठ को सत्य दिखाने के लिये न होनी चाहिये क्योंकि यह बुद्धिमत्ता नही बरन् निरी नीचता है, स्वार्थान्ध भ्रष्ट-बुद्धि की यह क्रूर कृपणता है।

४—देखो ! सावधान होकर समझ लो तीन प्रकार के स्वभाव वाले मनुष्य होते हैं। दैवी स्वभाव; मानवी स्वभाव और आसुरी स्वभाव।

५—अन्याय का बदला लेना तो मनुष्य का स्वभाव ही है लेकिन जो बुद्धिमान् दैवी स्वभाव को धारण करते हैं, वे तो क्षमा ही करते हैं, और जो लोग दूसरों को व्यर्थ हानि पहुंचाते हैं, दुख देते हैं, वह तो निरे आसुरी स्वभाव के मनुष्य हैं।

६—यदि आप बुद्धिमान् हैं तो दूसरों से कदाचित धोखे से धोखा खा जाओ लेकिन आप स्वयं दूसरों को धोखा न दो।

७—आप क्षणिक सुख-भोगों की मादकता में न भूल कर सत्य, शाश्वत सुख को जानो, सत्य धर्म को जानो और धर्मात्मा बनो, धीर, वीर, गम्भीर, ज्ञानी बनो और सदुग्राहक परोपकार भावना को क्रिया रूप में चरितार्थ करो।

८—ध्यान रहे ! बुद्धिमत्ता के गर्व में किसी को मूर्ख समझ कर अपमानित न करो। सभी मनुष्य अपूर्ण हैं और सभी से भूल होनी संभव है। भूले हुए को प्रेम पूर्वक समझाना उचित है न कि अपमानित करना।

९—आप दूसरों के दोषों को जितनी गहरी दृष्टि से देखते हो, छान बीन करते हो, उसी प्रकार अपने दोषों को कड़ी दृष्टि से देखो। अपने मन को इस विषय में प्यार दुलार करने की जगह हमेशा ताडना देनी होगी।

१०—प्रायः अनेकों प्रसङ्गों में बिना सोचे समझे ही अपने प्रिय सम्बन्धियों एवं मित्रों को, भ्रमवश, अभिमान वश, आवेश, (जोश) में आकर न कहने योग्य बर्ताव कर बैठते हो। इस प्रकार के आवेश पर काबू प्राप्त करना चाहिए।

११—ध्यान रहे, जो मनुष्य, चरित्रहीन, स्वार्थी अभिमानी एवं विवेकरहित होता है, वही हर एक अवसर पर प्रायः कर्तव्य और धर्म से विचलित होता है और इसी प्रकार के व्यक्ति मानव-समाज में ईर्षा; द्वेष, कलह आदि दुर्भावों को फैलाते रहते हैं।

१२—आप अपने भीतर देखते रहिये, जहां कहीं उदण्डता, अभिमान-वश आसुरी प्रकृति के लक्षण व्यौहार में आ जायें, वही अपनी विद्या एव बुद्धिमत्ता को धिक्कारिये।

१३—आप विचार करके देखिये कितनी ही बडी-बडी डिगरियां आपको मिल जावें और कितने ही वैभव ऐश्वर्य के बीच आप क्यों न रहें, सैकडों मनुष्य आपके इशारे पर क्यों नाचते रहें, फिर भी आपकी बुद्धिमत्ता और महानता का सच्चा पता आपके दैनिक व्योहारों से ही मिलेगा।

———